दक्षीण भारत में जैन धर्म के ह्रास का करुण दस्तावेज

जैनत्व जागरण

भाग-2

भूषण शाह

''जैनशासन-जयकारा''

जैनत्व जागरण

भाग-2

दक्षीण भारत में जैनधर्म के ह्रास का करूण दस्तावेज

*** देवलोक से दिव्य सान्निध्य ***

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

*** मार्गदर्शन ***

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

*** संपादक ***

भूषण शाह

*** प्रकाशक ***

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौंक के पास, घाटलोडीया
अहमदाबाद -380061
मो. 09601529519, 9429810625

जैनत्व जागरण

भाग-2

© लेखक एवं प्रकाशक

* प्रतियाँ : 1000

* प्रकाशन वर्ष : वि. सं. 2073, ई. सं. 2017

* मूल्य : 100 ₹

* न्याय क्षेत्र : अहमदाबाद

प्राप्ति स्थान

'मिशन जैनत्व जागरण' के सभी केन्द्र

अहमदाबाद
101, शान्तम् एपार्ट.
हरिदास पार्क,
सेटेलाइट रोड,
अमहदाबाद

जयपुर (राज.)
आकाश जैन
ए/133, नित्यानंद नगर
क्वीन्स रोड, जयपुर

नाशिक (महा.)
आनंद नागशेठिया
641, महाशोबा लेन
रविवार पेठ,
नाशिक (महा.)

आग्रा (उ.प्र.)
सचिन जैन
डी-19, अलका कुंज
खावेरी फेझ-2
कमलानगर - आग्रा

Chennai
Komal Shah
B-13,kent apts,
26 Ritherdon rd, Vepery,
Chennai - 600007

मुंबई
हेरत मणियार
ए/11 , ओम जोशी अपार्ट
लल्लुभाई पार्क रोड,
ऐंजललेंड स्कूल के सामने
अंधेरी (वेस्ट) मुंबई

भीलवाड़ा (राज.)
सुनिल जैन (बालड़)
"सुपार्श्व" जैन मंदिर के पास
जमना विहार-भीलवाड़ा

Bangalore
Premlataji Chauhan
425, 2nd Floor,
7th B Main, 4th Block
Jaynagar, **Bangalore**

लुधियाना
अभिषेक जैन,
शान्ति निटवेर्स
पुराना बाजार
लुधियाना (पंजाब)

उदयपुर (राज.)
अरुण कुमार बडाला
अध्यक्ष अखिल भारतीय
श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक
युवक महासंघ उदयपुर शहर
427-बी, एमराल्ड टावर,
हाथीपोल,
उदयपुर-313001 (राज.)

* प्रस्तुत पुस्तक पू. साधु-साध्वी भदवंतों को पत्र प्राप्त होने पर भेंट स्वरूप भेजी जाएगी। * आवश्यकता न होने पर पुस्तक को प्रकाशक के पते पर वापस भेजने का कष्ट करें। * आप इसे Online भी पढ़ सकते हैं.... www.jaineliabrary.org. पर। * पुस्तक के विषय में आपके अभिप्राय अवश्य भेजें। * पोस्ट से या कोरियर से मंगवाने वाले प्रकाशक के एड्रेस से मंगावा सकते हैं।

* मुद्रक : ममता क्रियेशन, मुंबई (77384 08740)

पुष्प समर्पण....

आपश्री ने दक्षीण भारत में विचरण करके
अनेक जगह जैनशासन के अवशेष व
अस्तित्व को खोज निकाला....
'कल्याण' के माध्यम से उसको
जैनशासन के सामने लाया....
ऐसे शासन प्रभावक
आ.भ.हार्दिकरत्नसूरिजीम.सा.
एवं 'कल्याण' के ही माध्यम से
दक्षीण देश की कई जानकारी देनेवाले
मेरे 'कल्याणमित्र'
ऋषभ भंडारी को
प्रस्तुत पुष्प

सादर समर्पित....

–भूषण शाह

अनुक्रमणिका

क्र.		प्रष्ठ.
1.	हृदय की बात...	05
2.	जैनत्व जागरण : पराक्रम के प्राङ्गण में...	06
3.	जैनधर्म का पतन और पुनरुत्थान...	32
4.	8000 जैन साधुओं की हत्या का विवरण...	48
5.	आंध्र प्रदेश में जैनधर्म एवं श्वेताम्बर संप्रदाय का पतन...	57
6.	दक्षीण में जैनों का मत संघर्ष...	60
7.	जैन धर्म का ह्रास और उसके प्रमाण...	63
8.	हिन्दू धर्म में जैन धर्म का आचरण...	68
9.	शैव संत (?) तिरु ज्ञान संबंधर एवं तिरु अप्पर का जीवन वृत्त...	72

हृदय की बात...

जैनधर्म एक समय पर विश्वधर्म था। काल के प्रभाव से व विधर्मि लोगों के अत्याचार से जैनशासन को सबसे ज्यादा हानी हुई, गुजरात, राजस्थान, मध्यभारत, महाराष्ट्र में हुई हानी का तो फीर भी यहाँ पुनःउद्धार हो गया, लेकिन सबसे ज्यादा हानी पूर्व भारत और दक्षीण देश में हुई जो आज भी अपुरणिय है। दक्षीण देश में लगभग जैनों का निकंदन ही हो गया है। अभी वहीँ जो भी जैन दिखते हैं वे सब गुजरात या मारवाड़ से गए हैं, वहाँ के मूल जैनी धर्मांतरित होकर लींगायत आदि हिन्दू धर्म में मिश्रित हो चुके हैं।

दक्षीण देश में विशेष प्रभाव यापनियों का था। यापनिय श्वे. में से निकले थे... उनकी संपूर्ण मान्यता श्वेतांबर ही थी,[1] लेकिन आचरण दीगंबर जैसा था।[2] और उनके शास्त्र श्वेतांबर परंपरा के ही थे।[3] मेरे अनुमान से इस संप्रदाय को सबसे ज्यादा हानी हुई है। भट्टारक संप्रदाय इनकी ही देन है। जो आज दक्षीण में दीगंबर मठ दिखते हैं, वो शायद यापनीयों के ही मूल मठ हैं। दक्षीण में शंकराचार्य के उदय के समय में सबसे ज्यादा मुश्केली जैनों को ही आई थी... तिरुपती बालाजी मंदिर भी नेमिनाथ भगवान का मन्दिर था, जिस पर कब्जा किया गया है। इस विषय में हमने पुनः प्रकाश डाला है। कई फोटो भी हमें मिले हैं।

पुस्तक में विशेष सहयोग ऋषभभाई भंडारी, जैन हेरीटेझ सेन्टर, थोमस एलक्सजेन्टर, जैन ट्रुथ, संजय जैन (दिल्ली) आदि का रहा है। इसके अलावा प.पू.पं.राजरक्षीत वि.म.सा., प.पू.आ.हार्दिकरत्नसूरिजी म.सा. आदि का भी सहयोग रहा है। मैं पूज्य गुरुदेवों का ऋणी हूँ व मेरे कल्याण मित्रों का आभारी हूँ। जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा हो तो मिच्छामि दुक्कड़म्।

– भूषण शाह

---

1. जैसे स्त्री मुक्ति, केवली आहार।
2. मुनि नग्न रहते थे.... भगवान की प्रतिमाजी भी नग्न रखते थे।
3. देखिए ''भगवती आराधना'' ग्रंथ

जैनत्व जागरण : पराक्रम के प्राङ्गण में...

कुछ लोगों को धारणा है कि अब सम्पूर्ण विश्व में वीरता की क्रियात्मक शिक्षा देने में ही मानव जाति का कल्याण है। यह युग 'Survival of the fittest'- 'जाको बल ताही को राज' की शिक्षा देते हुए बताया है कि बिना बलशाली बने इस संघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता पूर्ण जगत् में सम्मानपूर्ण जीवन सम्भव नहीं। 'बलमुपास्व-शक्ति की उपासना करो' यह मंत्र आज आराध्य है। दीन-हीन के लिये सजीव प्रगतिशील मानव-समाज में स्थान नहीं है। उन्हें तो मृत्यु की गोद में चिरकाल पर्यंत विश्राम लेने की सलाह दी जाती है। जैन आचार्य वादीभसिंह सूरि अपने क्षत्रचूड़ामणि में 'वीरभोग्या वसुन्धरा' लिखकर वीरता की ओर प्रगति-प्रेमी पुरुषों का ध्यान आकर्षित करते हैं। हिन्दू शास्त्रकार इस दिशा में तो यहाँ तक लिखते हैं कि बिना शक्ति-संचय किये यह मानव अपने आत्मस्वरूप की उपलब्धि करने में समर्थ नहीं हो सकता। उनका प्रवचन कहता है 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' जैनशास्त्रकारों ने इस संबंध में और भी अधिक महत्त्व की बात कही है कि निर्वाण-प्राप्ति के योग अतिशय साधना की क्षमता साधारण निःसत्त्व शरीर द्वारा सम्पन्न नहीं होती, महान् तल्लीनता रूप शुक्लध्यान की उपलब्धि के लिये वज्रशरीरी अर्थात् वज्रवृषभ-नाराच-संहननधारी होना अत्यंत आवश्यक है।[1]

कुछ लोगों की ऐसी भी समझ है कि वास्तविक वीरता के विकास के लिये अहिंसा की आराधना असाधारण कंटक का कार्य करती है। अहिंसा और वीरता में उन्हें आकाश-पाताल का अंतर दिखाई देता है। वे लोग यह भी सोचते हैं कि वीरता के लिए मांस भक्षण करना, शिकार खेलना आदि आवश्यक है। अहिंसात्मक जीवन शिकार तथा मांसभक्षण का मूलोच्छेद किये बिना विकसित नहीं होता। अतः अहिंसात्मक जैनधर्म की छत्रछाया में पराक्रम-प्रदीप बराबर प्रकाश प्रदान नहीं कर सकता। यह जैनधर्म की अहिंसा का प्रभाव था जो वीरभू भारत पराधीनता के पाश में ग्रस्त हुआ। एक बड़े नेता ने भारत के राजनैतिक अधःपात का दोष जैन-धर्म की अहिंसा की शिक्षा के ऊपर लादा था। ऐसे प्रमुख पुरुषों की भ्रान्त धारणाओं पर सत्य के आलोक में विचार करना आवश्यक है। अहिंसात्मक जीवन वीरता का पोषक तथा जीवनदाता है। बिना वीरतापूर्ण

1. 'उत्तमसंहननस्य एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्।'

अंतःकरण हुए इस जीव के हृदय में अहिंसा की ज्योति नहीं जगती। जिसे हमारे कुछ राजनीतिज्ञों ने निंदनीय अहिंसा समझ रखा है यथार्थ में वह कायरता और मानसिक दुर्बलता है। हंस और बकराज है यथार्थ में वह कायरता और मानसिक दुर्बलता है। हंस और बकराज के वर्ण में बाह्य धवलता समान रूप से प्रतिष्ठित रहती है किन्तु उनकी चित्तवृत्ति में महान् अंतर है। इसी प्रकार कायरता अथवा भीरुतापूर्ण वृत्ति और अहिंसा में भिन्नता है। अहिंसा के प्रभाव से आत्मशक्तियों की जागृति होती है और आत्मा अपने अनंत वीर्य को सोचकर विरुद्ध परिस्थिति के आगे अजेय और अभयपूर्ण प्रवृत्ति करने में पीछे नहीं हटती। जिस तरह कायरता से अहिंसावान का वीरतापूर्ण जीवन जुडा है। उसी प्रकार क्रूरता से भी उसकी आत्मा पृथक् है। क्रूरता में प्रकाश नहीं है। वह अत्यंत अंधी और पशुतापूर्ण विचित्र मनः स्थिति को उत्पन्न करती है। साधक अपनी आत्मजागृति–निमित्त क्रूरतापूर्ण कृतियों से बचता है, किन्तु वीरता के प्रांगण में वह अभय भाव से विचरण करता है वह तो जानता है–**'न मे मृत्युः कुतो भीतिः'**– जब मेरी आत्मा अमर है तब किसका भय किया जाय, डर तो अनात्मज्ञ के हृदय में सदा वास करता है।

क्रूरता की मुद्रा धारण करने वाली कथित वीरता के राज्य में यह जगत् यथार्थ शांति और समृद्धि के दर्शन से पूर्णतया वंचित रहता है। क्रूर सिंह के राज्य में जीवधारियों का जीवन असम्भव बन जाता है। उसी प्रकार क्रूरता प्रधान मानव–समुदाय के नेतृत्व में अशांति, कलह, व्यथा और दुःख का ही नग्न नर्तन दिखाई देगा।

जब अहिंसात्मक व्यक्तियों के हाथ में भारत की बागडोर थी, तब देश का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य था।[1] आज इस अहिंसा के स्थान में कहीं क्रूरता और कही कायरता के प्रतिष्ठित होने के कारण अगणित विपत्तियों का दौरदौरा दिखाई पड़ता है। वस्तुस्थिति से अपरिचित होने के कारण ही लोग भगवती अहिंसा को क्रूरता और कायरता के फलस्वरूप होने वाले राष्ट्रीय पतन का अपराधी बनाते हैं। लोगों ने वीरता को युद्धस्थल तक ही सीमित समझा है किन्तु 'साहित्यदर्पण' ने उसे दान, धर्म, युद्ध तथा दया इन चार विभागों से युक्त बताया है।[2] जैनधर्म की आराधना करने वालों को हम इस प्रकाश में देखें तो हमें विदित होगा कि जैनधर्म का आलोक किस प्रकार जीवन को प्रकाशपूर्ण बनाता रहा है।

1. चंद्रगुप्त आदि जैन नरेशों के शासन का इतिवृत्त इस बात का समर्थक है।
2. 'स च दान–धर्म–युद्धर्दयया च समन्वितश्चतुर्था स्यात्।'

इतिहास के क्षेत्र में भारतीय स्वातंत्र्य के श्रेष्ठ आराधक महाराणा प्रताप को स्वेच्छा से अपनी सारी सम्पत्ति समर्पित करने वाला वीर भामाशाह[1] अहिंसा का आराधक जैनशासन का पालक था। यदि भामाशाह ने अपनी श्रेष्ठ 'दानवीरता' द्वारा महाराणा की सहायता[2] न की होती तो मेवाड़ का इतिहास न जाने किस रूप में लिखा मिलता। जैनशासन में आदर्श गृहस्थ के दो मुख्य कर्त्तव्य बताये गये हैं, एक तो वीरों की वंदना और दूसरा योग्य पात्रों को औषधि, शास्त्र, अभय, आहार नाम के चार प्रकार का दान देना है। एक जैन साधक शिक्षा देते हैं-'धन बिजुरी उनहार, नरभव लाहौ लीजिये।' आज भी जैन समाज में दान की उच्च परम्परा का पूर्णतया संरक्षण पाया जाता है। जैन अखबारों से इस बात का पुष्ट प्रमाण प्राप्त होगा। असमर्थ जनों को इस सुन्दर शैली से समर्थ श्रीमान् सहायता देते थे, कि लेने वाले के कल्पित गौरव की भावना को बिना आघात पहुंचे कार्य सम्पन्न किया जाता था। दान की घोषणा कर दानवीर बनने के बदले सात्त्विक भावापन्न धनी श्रावक गुप्त रूप से सहायता पहुँचाया करते थे। **सर्वानन्दसूरि** रचित 'जगडू-चरित्र' के आधार पर 'हरिजन' (11 मार्च सन् 1947, पृ. 143) में एक लेख छपा था, कि संवत् 1312 में कच्छ प्रान्त के भद्रेश्वरपुर में श्रीमाली जैन जगडू नामक श्रावक बड़े सम्पन्न तथा दानशील थे, जो रात्रि के समय सोने के दीनार-सिक्का संयुक्त-लाइ-समूह[3] को विपुल मात्रा में कुलीन लोगों को अर्पण करते थे। प्रत्येक प्रान्त के बड़े-बूढ़ों से इस प्रकार की साधर्मी वात्सल्य की कथाएँ अनेक स्थल में सुनने में आती है।

धर्म के क्षेत्र में वीरता दिखाने में भी जैन गृहस्थों का चरित्र उदात्त रहा है। बौद्ध शासक के अत्याचार के आगे अपने मस्तक न झुका मृत्यु की गोद में सहर्ष सो जाने वाले, जैनाचार्य हरिभद्रसूरिजी म. के शिष्य हंस-परमहंस का धर्म-प्रेम

---

1. ''जा धन के हित नारि तजै पति पूत तजै पितु शीलहिं सोई
भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई।
ता धन को बनियां ह्वै गिन्यो न दियो दुख देश के आरत होई।
स्वारथ आर्य तुम्हारो ई है तुमरे सम और न या जग कोई।।'' -भारतेन्दु हरिश्चंद्र
2. कर्नल डाय के कथनानुसार यह धन 25 हजार सैन्य को 12 वर्ष तक भरणपोषण में समर्थ था। - डा राजस्थान 102-3
3. ''स्वर्णदीनारसंयुक्तान् लाजपिण्डान् स कोटिशः।
निशायामर्पयामास कुलीनाय जनाय च।।'' -जगडू चरित्र 6/13

वीरता का अनुपम आदर्श है। विपत्ति की भीषण ज्वाला में से निकलने वाले जैन धर्मवीरों की गणना कौन कर सकता है? **इतिहासकार स्मिथ महाशय** ने अपने 'भारतवर्ष के इतिहास' में लिखा है कि 'चोलवंशी पाण्ड्यनरेश सुन्दर ने अपनी पत्नी के मोहवश वैदिक धर्म अंगीकार किया और जैन प्रजा को हिन्दू धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया।' जिनके अंतःकरण में जैनशासन की प्रतिष्ठा अंकित थी, उन्होंने अपने सिद्धान्त का परित्याग करना स्वीकार नहीं किया। फलतः उन्हें फांसी के तख्ते पर टांग दिया गया। **स्मिथ महाशय लिखते हैं–ऐसी परम्परा है कि 8000 जैनी फांसी पर लटका दिये गये थे। उस पाशविक कृत्य की स्मृति मदुरई के विख्यात मीनाक्षी नाम के मंदिर में चित्रों के रूप में दीवार पर विद्यमान हैं। आज भी मदुरई के हिन्दू लोग उस स्थल पर प्रतिवर्ष आनन्दोत्सव मनाते हैं जहाँ जैनों का संहार किया गया था।**[1] इसे व्यतीत हुए अभी दो सदी का समय न हुआ होगा जब कि प्रख्यात जैन ग्रंथकार पंडितप्रवर टोडरमल जी, जयपुर के तत्कालीन नरेश के कोपवश हाथी के पैरों के नीचे दबाकर मार डाले गये थे। इस प्रकार आत्मा की अमरता पर विश्वास कर सत्य और वीतराग धर्म के लिए परम प्रिय प्राणों का परित्याग करने वाले जैन वीरों का पवित्र नाम धार्मिक इतिहास में सदा अमर रहेगा।

दया के क्षेत्र में जैनियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज जब कि जड़वाद के प्रभाववश लोग मांसाहार आदि की ओर बढ़ते जा रहे हैं और असंयमपूर्ण प्रवृत्ति प्रवर्धमान हो रही है, तब जीवों की रक्षा तथा संयमपूर्ण साधना द्वारा मनुष्य भव की सफल करने वाले पुण्य पुरुषों से जैन समाज आज भी सम्पन्न है।

संग्राम-भूमि में जो पराक्रम प्रदर्शित किया जाता है वह वीरता के नाम से विख्यात् है। इस क्षेत्र में भी जैनसमाज का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। साधारणतया जैन-तत्त्वज्ञान के शिक्षण से अपरिचित व्यक्ति यह भ्रान्त धारणा बना लेते हैं कि कहां अहिंसा का तत्त्वज्ञान और कहां युद्धभूमि में पराक्रम? दोनों में प्रकाश-अंधकार जैसा विरोध है। किन्तु वे यह नहीं जानते कि जैनधर्म में गृहस्थ के लिए जो अहिंसा की मर्यादा बांधी गई है उसके अनुसार वह निरर्थक प्राणिवध न करता हुआ न्याय और कर्त्तव्यपालन निमित्त अस्त्र-शस्त्र का संचालन भी कर सकता है। इस विषय में भारतीय इतिहास से प्राप्त सामग्री यह सिद्ध करती है कि पराक्रम के

1. "Tradition avers that 8000 (eight thousand) of them (Jains) were impaled. Memory of the facts has been preserved in various ways and to this day the Hindoos of Madura where the tragedy took place celebrate the anniversary of the impalement of the Jains as a festival (Utsav)" - *V. Smith, His. of India.*

प्रांगण में महावीर के आराधक कभी भी पीछे नहीं रहे हैं। **रायबहादुर महामहोपाध्याय पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा** ने 'राजपूताने के जैनवीर' की भूमिका में लिखा है-'वीरता किसी जाति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। भारत में प्रत्येक जाति में वीर पुरुष हुए हैं। राजपूताना सदा से वीरस्थल रहा है। जैनधर्म में दया प्रधान होते हुए भी वे लोग अन्य जातियों से पीछे नहीं रहे हैं। शताब्दियों से राजस्थान में मंत्री आदि उच्च पदों पर बहुधा जैनी रहे हैं, उन्होंने देश की आपत्ति के समय महान् सेवाएँ की हैं, जिनका वर्णन इतिहास में मिलता है।' भारतीय इतिहास-प्रसिद्ध सम्राट् बिम्बसार-श्रेणिक जैनधर्म का आधार-स्तम्भ था। उसके पुत्र अजातशत्रु-कुणिक[1] और उसके पुत्र सम्राट संप्रति जैनधर्म के संरक्षक प्रतापी नरेश थे। कलिंग,[2] उत्तर भारत तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत पर जैन नरेश नंदवर्धन का शासन था। ग्रीकनरेश सिकंदर के सेनापति सिल्युकस[3] को जैन सम्राट चंद्रगुप्त ने ही पराजित कर भारतीय साम्राज्य को अफगानिस्तान पर्यंत विस्तारित किया था। स्मिथ महाशय ने लिखा है कि 'मैं अब इस बात को स्वीकार करता हूँ कि सम्भवतः यह परम्परा मूल में यथार्थ है कि चंद्रगुप्त ने वास्तव में साम्राज्य का परित्याग कर जैन मुनि का पद अंगीकार किया था।[4] प्रतापी चंद्रगुप्त को आधुनिक अन्वेषणकार जैन प्रमाणित करने लगे हैं। डा. काशीप्रसाद जासवाल जैन विचारक विद्वान् लिखते हैं-' पांचवी सदी के जैनग्रंथ एवं पश्चात्वर्ती जैन शिलालेख यह प्रमाणित[5] करते हैं कि चंद्रगुप्त जैन सम्राट् था, जिसने मुनिराज का पद अंगीकार

---

1. The literary and legendary traditions of hte Jains about Srenika are so varied and so well recorded that they bear eloquent witnesses to the high respect with which the Jains held one of their greatest loyal patrons, whose historicity is unfortunately past all doubts. *- Jainism in North India, P. 116.*
   Tradition runs that he built many shrines on the summit of Parasnatha hill in Bihar. *- J.R.A.S. 1842.*
2. *Cambridge His. of India, P. 161*
3. *J.B. & O. Research Soc., Vol. 4, P. 463.*
4. I am now disposed to believe that the tradition is probably true in its main outline and that Chandragupta really abdicated and became a Jain ascetic. V. Smith, *His. Of India. P. 146.*
5. The Jain books (5th cen. A.C.) and later Jain inscriptions claim Chandragupta as a Jain Imperial ascetic. My studies have compelled me to respect the historical data of Jain writings and see no reason why we should not accept the Jain claim that Chandragupta at the end of his reign accepted Jainism and abdicated and died as a Jain ascetic. I am not the first to accept the view. Mr. Rice, who has studied the Jain inscriptions of Sravanbelgola thoroughly, gave verdict in favour of it and Mr. V. Smith has also leaned towards it ultimately. *- J.B.O.R.S., Vol. VIII.*

किया था। मेरे अध्ययन ने जैनशास्त्रों की ऐतिहासिक बात को स्वीकार करने को मुझे बाध्य किया है। मुझे इस बात को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं दिखता कि हम क्यों न जैनमान्यता को स्वीकार करें कि चंद्रगुप्त ने अपने राज्यकाल के अंत में जैनधर्म को स्वीकार किया था, तथा राज्य का परित्याग करके जैनमुनि के रूप में प्राणपरित्याग किया? इस बात को स्वीकार करने वालों में केवल मैं ही नहीं हूँ; राइस साहब, जिन्होंने श्रवणबेलगोला के जैनशिलालेख का भलीभांति अध्ययन किया है, इस बात के समर्थन में अपना निर्णय दिया है, अंत में स्मिथ महाशय भी इसी ओर झुक गए हैं।'' प्राक्तनविमर्शविचक्षण रायबहादुर श्रीनरसिंहाचार्य का अभिमत[1] है कि-''चंद्रगुप्त एक सच्चे वीर थे और उन्होंने जैन शास्त्रानुसार सल्लेखना कर चंद्रगिरि पर्वत से स्वर्गलाभ किया।'' वे यह भी लिखते हैं कि श्रवणबेलगोला के चंद्रबस्ती नाम के चंद्रगिरि पर अवस्थित मंदिर की दीवारों में सम्राट चंद्रगुप्त के जीवन को अंकित करने वाले चित्र हैं। डॉ. एस. डब्ल्यू. टामस ने भी यह लिखा है[2] कि चंद्रगुप्त श्रमणों के भक्तिपूर्ण शिक्षण को स्वीकार करता था जो ब्राह्मणों के सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

जैनधर्मविद्वेषी विप्रवर्ग ने जैसे जैन देवस्थान, शास्त्रभण्डार, जैनमठ तथा जैन जनता के विनाश का निर्मम क्रूर कार्य किया, उसी प्रकार उन्होंने जैन महापुरुष के चरित्र पर कालिमा लगाने में कमी नहीं की। 'प्रतापी सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य जैनधर्म के आराधक थे, वे क्षत्रिय कुल के शिरोमणि थे और उन्होंने अपने जीवन का अन्त जैन मुनि के रूप में व्यतीत किया था।' यह बात प्राचीन प्राकृत के शास्त्र '**तिलोयपण्णत्ति**' से भी समर्थित होती है-

> **''मउंडधरेसु चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य।**
> **तत्तो मउडधरा दुप्पव्वज्जं णेव गिण्हंति।। 4/1481।**

मुकुटधर राजाओं में अंतिम चंद्रगुप्त नाम के नरेश ने जिनेन्द्र दीक्षा धारण की इसके पश्चात् मुकुटधारी नरेश प्रवज्या को नहीं धारण करते हैं।

---

1. The hill which contains the footprints of his (Chandragupta's) preceptor is called Chandra Giri after his name and on it stands a magnificent temple called Chandra Basti with its carved and decorated walls, portraying scenes from the life of the great Emperor. He was a true hero and attained the heaven from that hill in the Jain manner of Sallekhana.
2. "The testimony of Megasthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teachings of Sramanas as opposed to the doctrines of the Brahmins" *Jainism or Early Faith of Asoka* by F.W. Thomas, p. 23.

मौर्यवंश ईसा की छठवीं सदी में था। भगवान महावीर के एकदश मुख्य शिष्यों में सातवें मुनि पुत्र थे। मौर्यपुत्रस्तु सप्तमः (हरिवंशपुराण) बौद्ध साहित्य में मौर्य वंश वाले क्षत्रिय बताये गये हैं। अतः चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय थे, यह सत्य शिरोधार्य करना उचित है। खेद है कि अब तक भी ऐसे महापुरुष के उच्च कुल को बदलकर उन्हें मुरा नाईन के गर्भ से उत्पन्न बताया जाता है, तथा सरकारी शालाओं तक में ऐसा प्रचार किया जाता है।

बुद्धधर्म – भक्त रूप से विख्यात् धर्मप्रिय सम्राट अशोक के साहित्य को पढ़कर कुछ विद्वान् अशोक के जीवन को जैनधर्म से संबंधित स्वीकार करते हैं। प्रो. कर्ण की धारणा है[1] कि अहिंसा के विषय में अशोक के आदेश बौद्धों की अपेक्षा जैनसिद्धान्त से अधिक मिलते हैं। आज जो अशोक का धर्मचक्र भारत सरकार ने अपने राष्ट्रध्वज में अलंकृत किया है, उस चक्र–चिन्ह में चौबीस आरों का सद्भाव चौबीस तीर्थंकरों का प्रतीक मानना सम्यक् प्रतीत होता है। स्वामी समन्तभद्र ने चक्रवर्ती शान्तिनाथ तीर्थंकर के धर्मचक्र को करुणा की किरणों से सुसज्जित–'दयादीधिति – धर्मचक्रम्' कहा है। प्रत्येक तीर्थंकर ने अपनी करुणामयी प्रवृत्ति और साधना के पश्चात् धर्मचक्र को प्राप्त किया है, अतः धर्मचक्र के सच्चे अधिपति 24 तीर्थकरों की पवित्र स्मृति का प्रतीक अशोक स्तम्भ का धर्मचक्र है। इसके विरुद्ध प्रबल तर्कपूर्ण सामग्री का सद्भाव भी नहीं है। अशोक का जैनधर्म से सम्बन्ध सिद्ध होने पर धर्मचक्र के आरों का उपरोक्त प्रतीकपना स्वीकार करना सरल हो जाता है। प्रतीत होता है, कि जैसे बिम्बसार श्रेणिक का जीवन पूर्व में बौद्ध धर्माराधक के रूप में था, और पश्चात् रानी चेलना के, जिस विद्वेषी लोगों ने घृणित चित्रित किया है (देखो जयशंकरप्रसाद का चंद्रगुप्त नाटक) समर्थ प्रयत्न से वह जैन धर्मावलम्बी हो गया और वह जैन संस्कृति का महान् स्तम्भ हुआ, ऐसी ही धर्म–परिवर्तन की बात अशोक के जीवन में भी रही है। इस समन्वयात्मक दृष्टि से अशोक को जैन तथा बौद्धधर्म के प्रचार की बातों का विरोध नहीं रहता है।

'राजावलिकथे' नामक बन्नड़ ग्रंथ अशोक को जैन बताता है। महाकवि

1. "His (Asoka's) ordinances concerning the sparing of animal life agree much more closely with the ideas of heritical Jains that those of Buddhists"- *Indian Antiquary* Vol. V, Page 205.

कल्हण ने अपने संस्कृत ग्रंथ **'राजतरंगिणी' में अशोक द्वारा**[1] **काश्मीर में जैन धर्म के प्रचार करने का उल्लेख किया है।**[2] डा. टामस भी उपरोक्त बात का समर्थन करते हैं। **अबुलफजल के 'आइने अकबरी' से भी अशोक का जीवन जैनधर्म से संबंधित प्रमाणित होता है।**

फ्लोरा एनी स्टील (Flora Annie Steel) ने *"India through the Ages"* में लिखा है :-

'अशोक पर बौद्ध और जैनधर्म का सम्मिलित प्रभाव पड़ा था। उसके जीवन में कलिंग विजय में हुए प्राणघात से जो पश्चाताप उत्पन्न हुआ, उसके कारण उसके जीवन में परिवर्तन हुआ। इस विषय में विशेषज्ञों का मतभेद है कि अशोक पर अधिक प्रभाव जीवदया के सिद्धान्त का पड़ा जिसका जैनधर्म में प्रमुख स्थान है अथवा बौद्धधर्म से वह प्रभावित हुआ?' **वास्तव में अशोक के आदेशों में अहिंसाधर्म की जो सूक्ष्मता से परिपालना पाई जाती है, वह बौद्ध आचार की अपेक्षा जैनाचार के विशेष अनुरूप है।**[3]

अशोक के उत्तराधिकारी सम्प्रति के बारे में 'विश्ववाणी' मासिक पत्रिका ने 1941 में यह प्रकाशित किया था कि **सम्राट सम्प्रति ने अरबस्तान और फारस में जैन संस्कृति के केन्द्र स्थापित किए थे।** वह बड़ा शूरवीर तथा धार्मिक था।

विश्ववाणी के सम्पादक श्री विशम्भर नाथ पाण्डे ने लिखा है, 'इस समय जो ऐतिहासिक उल्लेख उपलब्ध है, उनसे यह स्पष्ट है कि ईसवी सन् की पहली शताब्दी में और उसके बाद एक हजार वर्षों तक जैनधर्म मध्यपूर्व के देशों में किसी न किसी रूप में यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम को प्रभावित करता रहा। प्रसिद्ध जर्मन इतिहास लेखक **वानक्रेमर** के अनुसार मध्यपूर्व में प्रचलित समानियां सम्प्रदाय

---

1. ''यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम्।
पुष्कलेऽत्रवितस्तात्रौ तस्तार स्तूपमण्डले।।'' – राजतरंगिणी अ. ।।
2. *Early Faith of Asoka* by Thomas.
3. "In B.C. 260-he (Ashoka) came under the mingled influence of Buddhism and Jainism. This regret then was the cosmic touch which drove Ashoka to find comfort in preaching the doctrine of the sanctity drove Ashoka to find comfort in preaching the doctrine of the sanctity of life. Was it Jainism (amongst the tenets of which this takes first place), which influenced Ashoka most, or was it Buddhism. Doctors Differ." - *India through the Age,* P. 46.

श्रमण शब्द का अपभ्रंश है। इतिहास लेखक **जी. एफ. मूर** लिखते हैं कि हरजत ईसा की जन्म की शताब्दी से पूर्व ईराक, श्याम, फिलीस्तीन में जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैकड़ों की संख्या में चारों ओर फैले हुए थे। पश्चिम एशिया, मिश्र यूनान और इथियोपिया के पहाड़ों और जंगलों में अगणित भारतीय साधु रहते थे। वे अपने त्याग और अपनी विद्या के लिए मशहूर थे। वे साधु वस्त्रों तक का त्याग किए हुए थे।[1] श्री पाण्डे ने यह भी लिखा है '**लोकमान्य तिलक** ने ठीक ही कहा था, कि गुजरात आदि प्रान्तों में भी जो प्राणि दया और निरामिष भोजन का आग्रह है, वह जैन परम्परा का ही प्रभाव है।''

कुछ चिंतनशील विद्वानों का यह विचार है कि छांदोग्य उपनिषद् में घोर आंगिरस ऋषि ने महाराज श्री कृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा दी थी। उस यज्ञ की दक्षिणा दान, तपश्चर्या, अहिंसा, सत्यसम्भाषण तथा ऋजुभाव थे। वे ऋषि महाराज कृष्ण के चचेरे भाई भगवान् नेमिनाथ ही थे, जिन्हें जैन परम्परा में बाईसवें तीर्थंकर रूप में पूजते हैं।

प्रो. पिशल और मुखर्जी आदि का अध्ययन इस निष्कर्ष को बताता है कि अशोक के नाम से विख्यात अनेक महत्त्वपूर्ण शिलालेख यथार्थ में सम्प्रति के हैं। प्रियदर्शी रूप में सम्प्रति का ही वर्णन किया गया है। 'Epitome of Jainism' में सम्प्रति को महान् वीर जैन नरेश और धर्मप्रवर्धक कहा है, जिसने सुदूर देशों में जैन धर्म के प्रचार का प्रयत्न किया था।[2]

महावंश काव्य से ज्ञात होता है कि वर्तमान सीलोन–सिंहल की राजधानी अनुराधपुर में जैन मंदिर था जो स्पष्टतया सिंहल द्वीप में जैन प्रभाव को सूचित करता है।[3]

महाप्रतापी एलसम्राट महामेघवाहन खारवेल महाराज जैन थे। उन्होंने उत्तर भारत के प्रतापी नरेश पुष्यमित्र को पराजित किया था। नंदनरेशों के यहाँ भी

1. वीर–15 जनवरी 1963.
2. "Samprati was a great Jain monarch and a staunch supporter of the faith. He erected thousands of temples throughout the length and breadth of his vast empire and consecrated large number of images, He is said to have sent Jain missionaries and ascetics abroad to preach Jainism in the distant countries and spread the faith amongst the people there." - *Epitome of Jainism.*
3. वान ग्लेसनेप के जैनीजम का हिंदी अनुवाद पृष्ठ 60 देखो।

जैनधर्म की मान्यता थी। यह बात हाथीगुफा के शिलालेख से विदित होती है।

दक्षिण भारत के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात है कि प्रतापी नरेश तथा गंगराज्य के संस्थापक महाराज कोंगुणी वर्मन ने आचार्य सिंहनंदि के उपदेश से शिवमग्गा के समीप एक जिन मंदिर बनवाया था। इनके वंशज अविनीत नरेश ने अपने मस्तक पर जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति विराजमान कर काबेरी नदी को बाढ़ की अवस्था में पार किया था। एक शिलालेख में इन्हें शौर्य की मूर्ति तथा गज, अश्व एवं धनुर्विद्या में प्रवीण बताया है। इनके उत्तराधिकारी दुर्विनीत नरेश प्रभु, मंत्र और उत्साह शक्तिसमन्वित महान् योद्धा तथा विद्वान थे। महाराज नीतिमार्ग और बूतग जिन धर्म परायण राजा थे।[1] बूतग शास्त्रज्ञ और शस्त्रज्ञ विख्यात था। महाराज मारसिंह[2] गंगवंश के शिरोमणि पराक्रमी निर्भीक, धार्मिक जैन नरेश थे। पांचवी सदी में कदम्ब नरेश मृगेश वर्मा और उनके पुत्र रवि वर्मा अपने पराक्रम और जैनधर्म के प्रेम के लिए प्रख्यात थे। रविवर्मा ने कार्तिक सुदी के अष्टाह्निका पर्व को महोत्सवपूर्वक मनाने की राजाज्ञा[3] प्रचारित की थी।

राष्ट्रकूटों में जैनधर्म की विशेष मान्यता थी। सम्राट अमोघवर्ष जिनेन्द्रभक्त, पराक्रमी, पुण्यचरित्र तथा व्यवस्थापक नरेश थे। उनका विश्व के चार विख्यात नरेशों में स्थान था। नवीं शदी का एक अरब देश का यात्री लिखता है[4] कि अमोघवर्ष के राज्य में सर्व-प्रकार की सुव्यवस्था थी। लोग शाकाहारी थे। सन् 851 में एक दूसरा अरब का यात्री लिखता है-'अमोघवर्ष के राज्य में धन सुरक्षित था, चोरी-डकैती का अभाव था; वाणिज्य उन्नति के शिखर पर था, विदेशियों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार होता था।' राष्ट्रकूट वंश में [5]बंकेय, श्रीविजय, नरसिंह आदि अनेक पराक्रमी जैन प्रतापी पुरुष हुए हैं। अमोघवर्ष ने अपने जीवन के संध्याकाल में जैनमुनि की मुद्रा भगवान् जिनसेनाचार्य के आध्यात्मिक प्रभाव वश

1. 'येन संप्रतिना......... साधुवेषधारिनिजकिंकरजनप्रेषणेन अनार्यदेशेऽपि साधुविहारं कारितवान्।'' – खरतरगच्छावलि संग्रह, पृ. 17।
2. *Mediaeval Jainism,* pp. 10-30.
3. Ibid and Some Historical Jain Kings and Heroes.
   - *Jain Antiquary,* Vol. Vii No. 1, p.21
4. *Med, Jainism,* pp. 30-34.
5. "Rasthtrakuta territory wsa vast, well peopled, commercial and fertile. The People mostly lived on vegetable diet." - *Bombay Gaz.,* Vol. I, pp. 526-30.

धारण की थी। राष्ट्रकूटवंश के जैनवीरों के चरित्र के अध्येता विद्वान् डा. अल्टेकर अपनी पुस्तक 'राष्ट्रकूट' में लिखते हैं[1]–''जैन नरेशों तथा सेनानायकों के ऐसे कार्यों को देखते हुए यह बात स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं कि जैनधर्म तथा बौद्ध धर्म की शिक्षा के कारण हिंदू भारत में सांग्रामिक शौर्य का ह्रास हुआ है।''[2]

धारवाड़. बेलगांव जिलों में शासन करने वाले महामंडलेश्वर नरेशों में महान् योद्धा मेरद, पृथ्वीराम, शांतिवर्म, कलासेन, कन्नकैर, कार्तवीर्य, लक्ष्मीदेव, मल्लिकार्जुन आदि जैनशासन के प्रति विशेष अनुरक्त थे। दसवीं से तेरहवीं सदी तक कोल्हापुर, बेलगांव में अपने पराक्रम के द्वारा शांति का राज्य स्थापित करने वाले शीलहार नरेश जैन थे। महाराज विक्रमादित्य ने चालुक्यों पर आक्रमण किया था। उनको कलिकाल विक्रमादित्य भी कहते थे। जिनधर्म के प्रति विशेष भक्तिवश उन्होंने कोल्हापुर के जिनमंदिर के लिये बहुत भूमिदान की थी।[3] सामंत पराक्रमी निम्ब महाराज ने कोल्हापुर के विख्यात लक्ष्मीमंदिर के समीप भगवान् नेमिनाथ का कलापूर्ण जिनमंदिर बनवाया था, उसके बाह्य भाग में 72 खड्गासन जैन मूर्तियां विद्यमान हैं। **किन्तु आज वह वैष्णव मंदिर बना लिया गया है। भगवान् नेमिनाथ के स्थान पर विष्णु की मूर्ति रख दी गई है।**

कोल्हापुर के जैन मंदिर का जिस प्रकार हिन्दू मंदिर में परिवर्तन किया गया, इसी प्रकार **पंढरपुर के प्रख्यात विठोबा मंदिर की कथा है। कीर्तन सम्राट तात्या** साहब चौपड़े रचित पुस्तक 'पंढरपुर चा विठोबा' में यह बात साधार युक्तिपूर्वक प्रमाणित की गई है कि **पंढरपुर स्थित भगवान नेमिनाथ की मूर्ति युक्त मंदिर आज विठोबा का मंदिर रूप में माना जाता है।** जान विल्सन नामक अंग्रेज में विठोबा के मंदिर को हिन्दू मंदिर नहीं माना है। उसका कथन हैः

"The celebrated temple of Vithoba near Pandharpur is supposed to be a Buddhist Structural temple now appropriated by the Brahmins"(*Memories of the Cave Temples* - John Wilson D.D.F.R.S.)" –

1. "In the face of achievements of the Jain princes and generals of this period, we can hardly subscribe to the theory that Jainism and Buddhism were chiefly responsible for the military emasculation of the population that led to the fall of ot he Hindu India." -*The Rastrakutas,* p. 316-17.
2. Some Hist. Jain Kings and Heroes.
3. The temple has changed hands. Sheshshayiji has occupied the place of Neminatha. All the basadis (Jain temples) in Kolhapur and near about have received grants at the hands of Nimbadev. -*Kundnagar Loc cit.,* P. 11

पंढरपुर के समीपवर्ती विख्यात विठोबा का मंदिर सम्भवतः बौद्ध मंदिर है, जिसको ब्राह्मणों ने अपना बना लिया।

सर विसेंट स्मिथ सदृश नामांकित इतिहासवेत्ता ने यह स्वीकार किया है कि अनेक स्थलों में जैन स्मारकों को बौद्ध कह दिया गया है-"In some cases monuments which are really Jains, have been erroneously described as Buddhists." इस मूल का उदाहरण यह विठोबा का जैन मंदिर ही है। वैदिक विद्वान श्री जोशी का कथन है कि ''या मूर्तीला शंखादि चिन्हें आहेत'' यह मूर्ति में शंख का चिन्ह है। जैन तीर्थंकर कृष्णबंधु भगवान् नेमिनाथ का चिन्ह शंख माना गया है। इस मंदिर का विशिष्ट पुजारी जैन रहा आया है। उसे विठ्ठलदास कहते हैं। ज्योतिप्रसादजी जैन ने जब पंढरपुर पहुंचकर विठ्ठलदास से पूछा था, तो उसने कहा था, कि हमारे पूर्वज इस मंदिर को जैन मंदिर ही कहते चले आए हैं। उसके पास गवर्नमेंट आफ इंडिया की कई सदनें थीं। एक सदन के अनुसार भारत सरकार से उसे 19 रु. प्रतिवर्ष भेंट का मिलता था। श्री चौपड़े की पुस्तक के पृष्ठ 54 में लिखा है कि सतारा के छत्रपति शिवाजी महाराज की तरफ से विठ्ठलदास को 120 रु. वार्षिक सन् 1848 पर्यन्त मिलता था। उस पुस्तक के पृष्ठ 40 में एक महत्त्व की बात यह बताई है कि आषाढ़ी एकादशी को शंक सम्वत् 1724 में विरोधकृत संवत्सर में वहाँ मंदिर में मूर्ति की स्थापना हुई थी। राष्ट्रीय मराठा पत्र के 17 फरवरी सन् 1927 के अंक में मूर्ति के विषय में ये पद्य दिए थेः-

नेमिनाथस्य या मूर्ति स्त्रिषु लोकेषु विस्तुता।
द्वौ हस्तै कटिपर्याये स्थाययित्वा महात्मनः।।
मूर्ति स्तिस्ठति सा सम्यक् जैनेन्द्रेण च पूजिता।
अहिंसा परमं धर्मः स्थापयामास वै स च।।
युगैस्तु मनुजाक्षीणी विप्रभूमिश्च वासके।
मेलने धर्मराजस्य शकस्य गतावधिः।।
आषाढ़े शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महाति थौ।
बुधे च स्थापयामास विरोधकृति-वत्सरे।।

तीन लोक में स्तुति को प्राप्त नेमिनाथ की मूर्ति है जिसके हाथ कटिभाग पर स्थित हैं। उसकी जैन सम्यक् प्रकार पूजा करते हैं। अहिंसा परमधर्म है, यह तत्त्व स्थापित किया गया। युग अर्थात् चार मनुष्यों के नेत्र अर्थात् दो विप्रभूति अर्थात्

सात, धर्मराज युधिष्ठिर एक मनुष्यों के नेत्र अर्थात् दो विप्रभूति अर्थात् सात, धर्मराज युधिष्ठिर एक, इस प्रकार 1724 वर्ष शक के बीतने पर आसाढ़ शुक्ल एकादशी की महान तिथि को बुधवार के दिन विरोधकृत नामक संवत्सर में इस मूर्ति की स्थापना हुई।

कोल्हापुर के श्री भास्कर राव जाधव, एक अब्राह्मण नेता ने लिखा है कि **विठोबा की मूर्ति नग्न है तथा शंख चिन्ह युक्त होने से वह निःसंशय नेमिनाथ तीर्थंकर की है। मराठी के शब्द इस प्रकार है–**

''विठोबाची मूर्ति नग्न आहे व तिजजवळ लांछन शंख काढलेलें आहें यावरून ती मूर्ति नेमिनाथ तीर्थंकराची असावी असें निःसंशय ठरत आहे। कारण अशा लक्षणाची नग्न मूर्ति हिंदूची नसते।''

बद्रीनाथ की हिन्दू समाज में अत्यधिक मान्यता है; किन्तु इतिहासज्ञों के अनुसन्धान से यह जैन आराधना स्थल प्रमाणित होता है। इस संबंध में अत्यन्त विश्वसनीय वर्णन डॉ. वाइ. के. जैन, डिस्ट्रिक्ट हेल्थ ऑफिसर के द्वारा प्राप्त हुआ, जो ढाई वर्ष पर्यन्त बद्रीनाथ में थे तथा जनता के स्नेह पात्र बन गए थे। सन् 1949 में उन्हें बद्रीनाथ की मूर्ति को बिना श्रृंगार किए हुए प्रभात में सात बजे देखने का अवसर मिला। इसे निर्वाण-दर्शन कहा जाता है। मूर्ति श्यामवर्ण के पाषाण की है। वह जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है जिनके मस्तक पर स्थित फण टूटा है! मूर्ति और उसका मुख मण्डल घिसा हुआ है।[1] लोगों को बाहर से भगवान का दर्शन कराया जाता है; किन्तु मूर्ति कोठरी के भीतर है। मूर्ति की फोटो नहीं लेने देते हैं। किसी नारी ने फोटो ली थी, वह यत्र तत्र बाजार में बिकती है। मूर्ति जैन होते हुए भी चमत्कारपूर्ण होने के कारण हिन्दू समाज की आराधना का केन्द्र बनी है। कहा जाता है कि शंकराचार्य ने नारद कुण्ड में मूर्ति पाई थी, उसे जैन मूर्ति देख उन्होंने कुण्ड में डाल दी। ऐसा उन्होंने तीन बार किया। उन्हें स्वप्न हुआ कि यही मूर्ति बद्रीनाथ के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करेगी और लोग इसे पूजेंगे। इस कारण इसे स्थापित किया गया। वहाँ इस प्रकार की लोक प्रसिद्धि है कि बद्रीनाथ को जो जिस रूप में देखना चाहे, उसे वे उसी रूप में दिखते हैं। वैदिक लोग इसे पारसनाथ की न कहकर पारस पत्थर की कहते हैं। बद्रीनाथ के पास श्रीनगर नाम का एक स्थान है, जहाँ एक सुंदर दिगम्बर जैन मंदिर विराजमान है। उसमें दो हजार वर्ष प्राचीन

1. विशेष इतिहास के लिए देखीए 'हीमवंत स्थवीरावली' ग्रंथ।

श्यामवर्णीय भगवान् पार्श्वनाथ की छोटी मूर्ति विद्यमान है। यह मंदिर अलकनन्दा के किनारे पर है। यह अतिशय मंदिर है। ऐसी प्रसिद्धि है कि एक बार मंदिर नदी के प्रवाह में बह गया था, किन्तु मूर्ति ऊपर ही विराजमान रही आई थी। वहाँ के जैन बंधुओं ने डॉक्टर साहब को कहा था कि बद्रीनाथ की मूर्ति जैन प्रतिमा है। कहा जाता है कि बद्रीनाथ के पास से ही कैलाश पर्वत को जाने का रास्ता है। देहली से हरिद्वार तथा ऋषिकेश, लछमनझूला, देवप्रयाग, कीर्तिनगर तथा श्रीनगर होते हुए बद्रीनाथ पहुँचा जाता है। यह मार्ग बहुत चलता है।

उत्कल प्रान्त में जगन्नाथ तीर्थ की हिन्दू समाज में बहुत मान्यता है। जगन्नाथ के मंदिर में बाह्य भाग में आज भी एक जैन मूर्ति विद्यमान है। श्री नीलकण्ठदास ने, जो उत्कल प्रान्त के प्रख्यात नेता एवं महान् विद्वान् हैं; ''उड़ीसा में जैनधर्म'' पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है, 'जगन्नाथ एक जैन शब्द है। यह ऋषभनाथ से मिलता जुलता है। ऋषभनाथ का अर्थ सूर्यनाथ या जगत् के जीवन रूपी पुरुष होता है। यह प्राचीन बेबिलोन का आविष्कार है।'' उन्होंने यह लिखा है कि मिस्र देश के पुरुषोत्तम तथा पुरी के पुरुषोत्तम दोनों जैनधर्म के फल हैं। यह जगन्नाथ की परम्परा मूलतः पूर्णरूप में जैनधर्म की है।[1] 'नाथ' शब्द पूर्णरूप से जैनधर्म का निदर्शन है। संस्कृत में नाथ के माने होता है, जिससे मांग की जाती है। लगता है, पहिले इसका अर्थ उपास्य-'आत्मा-रूपी-पुरुष' था। कालक्रम के बाद इसका अर्थ भक्तिधर्म के अनुसार हो गया है।''[2]

उत्कल प्रांत के विद्वान पद्मभूषण डा. लक्ष्मीनारायण साहू ने लिखा है ' आज भारत का जो हिस्सा उत्कल के नाम से प्रख्यात है, उसमें डेढ़ करोड़ की आबादी के भीतर जैनियों की संख्या डेढ़ सौ भी नहीं दिखती। किन्तु एक दिन ऐसा भी था, जबकि जैनधर्म उत्कल का राष्ट्रीय धर्म बना हुआ था। सम्राट खारवेल के राजस्वकाल में उसी उत्कल में खंडगिरि की गुफाओं में खोदित शिला लिपियाँ इस बात की गवाह देने के लिए काफी हैं।' (पृष्ठ 15, **उड़ीसा में जैन धर्म**)। खारवेल के शिलालेखों में इस बात का वर्णन है कि [3]नंद नरेश कलिंग से जिन भगवान् की मूर्ति मगध ले गए थे, उस मूर्ति को सम्राट खारवेल ने वापस लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य

1. विशेष इतिहास के लिए देखीए 'हीमवंत स्थवीरावली' ग्रंथ।
2. विशेष इतिहास के लिए देखीए 'जैनत्व जागरण' भाग-1।
3. ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में महापद्मनन्द कलिंगजिन की मूर्ति को पाटलीपुत्र ले गए थे। तीन सौ वर्ष के पश्चात् खारवेल को उस मूर्ति को पुनः कलिंग लाने का सौभाग्य मिला। इससे नन्द नरेश जैनधर्म के आराधक थे, यह स्पष्ट होता है।

किया था। कलिंग के ऋषभ जिन की महान कीर्ति थी। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने *Imperial History of India* में लिखा है कि आर्य मंजुश्री मूलकल्प बौद्ध ग्रंथ का ईस्वी 983 में तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था। उसमें एक अध्याय है, जिसमें ई. 770 तक के भारतीय राजवंशों का वर्णन है। उसमें ऊंचे साधकों की गिनती में कलिंग के ऋषभ का नाम लिखा गया है। डॉ. साहू ने लिखा है, ऋग्वेद पांचवां मण्डल 10.116 में जैन साधुओं के नेता केशी की प्रशंसा है । इस केशी का वर्णन भागवत के ऋषभदेव की वर्णना से करीब-करीब मिलता है। पृ. 16)। डॉ. जायसवाल का कहना है कि सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख की चौदहवीं पंक्ति में महावीर स्वामी के कलिंग आने की और कुमार पर्वत के अपने धर्म का प्रचार करने की सूचना दी गई है। *(J.B.O.R.S., VIII P. 246)*। प्रतीत होता है कि जिन कलिंग-जिन की प्रसिद्धि रही है, वे भगवान् ऋषभदेव ही होंगे। भुवनेश्वर जगन्नाथ ये ऋषभदेव के नामान्तर हैं। सहस्त्र नाम पाठ में लिखा है ''देवदेवो जगन्नाथो जंगद्वंधुर्जगद्विभुः (9 शतक) मुक्तः शक्तो निराबाधो निस्कलो भुवनेश्वर''। (2 शतक) ऋषभदेव को पुरुदेव भी कहा गया है; ''आदिदेवः पुराणायः पुरुदेवोऽधिदेवता''[1] (9 शतक)। पुरुदेव चम्पू काव्य में ऋषभदेव का चरित्र वर्णित है। एक विचार है, कि संभवतः जगन्नाथ पुरी प्रारंभ में 'जगन्नाथ-पुरु' रहा जो जगन्नाथ पुरी हो गया हो। पद्मभूषण डॉ. लक्ष्मीनारायण साहू ने लिखा है, कि ''जगन्नाथजी के मंदिर के घेरा में कोहली वैकुंठ नाम से एक स्थान है।'' (पृ. 94) डॉ. साहू कोहली को कैवल्य का पर्यायवाची मानते हुए कहते हैं, ''यह कैवल्य शब्द जैनधर्म का ही है जिसे उड़िया ने अपना बना लिया है।'' उनका यह भी अभिमत है कि ''जगन्नाथ की रथयात्रा ऋषभदेव के रथोत्सव से मिलती है (पृ. 97)।'' **जगन्नाथ जी के मंदिर में जैन मूर्ति का सखाव, खारवेल के शिलालेख में कलिंग जिन का कथन तथा ऋषभदेव के पुरु नाम से पुरी रूपें रूपान्तर की संभावना आदि सामग्री पुरातत्त्व प्रेमियों के लिए विशेष चिन्तन योग्य है।**[2] खण्डवा (निमाड़ जिला) के अंतर्गत जैनतीर्थ सिद्धवरकूट के विषय में पद्मभूषण डा. माखनलालजी चतुर्वेदी ने कहा था, कि **'आज जिस स्थान को जैन लोग सिद्धवरकूट मानते हैं, वह यथार्थ में प्राचीन तीर्थ नहीं है। नर्मदा के तट पर जो**

1. पुरुदेव के नाम से बंगाल में पुरुलीया गाँव भी है जहाँ ऋषभदेव की कइ प्रतिमाजी मीलती है और एक अति विशाल प्रतिमाजी को 'काल भैरव' के नाम से लोग पूजते हैं।
2. जीरावला पार्श्वनाथजी की प्रतिमा जगन्नाथपुरी में स्थापित थी... देखीए 'जगजयवंत जीरावला'।

ओंकारेश्वर का मंदिर है, वही जैन मंदिर रहा है।' उन्होंने अपनी बात को पुष्ट करने के लिए यह कहा था कि उस मंदिर में जो अभी मूर्ति है, वह शिखर के नीचे नहीं है। ऐसा कभी नहीं होता, कि शिखर का स्थान अन्यत्र हो और मूर्ति अन्यत्र हो। यथार्थ में शिखर के नीचे का स्थान ढांक दिया गया है क्योंकि वहाँ जैनमूर्तियाँ रहीं हैं। ज्योतिप्रसादजी जैन को मैसूर राज्य के आस्थान महाविद्वान् पं. शांतिराज शास्त्री, श्री रघुचंद्रवल्लाल, श्री मंजैय्या हेगड़े तथा केन्द्रीय धारा सभी के भूतपूर्व सदस्य श्री जिनराज हेगड़े के साथ कर्णाटक प्रान्त का दौरा करने का सुयोग मिला था। उस समय उन्होंने अनेक जैन मंदिरों को देखा था, जिनको अन्य सम्प्रदायों ने अपना बना लिया था, किन्तु उन मंदिरों में जैनत्व के चिह्न रूप कहीं कहीं दीवार, छत आदि पर जैन मूर्तियाँ पाई जाती थीं।[1] काल और परिस्थितियाँ अखुत परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। कहां–कहां कैसे परिवर्तन आदि हुए इस को जानने के साधन बहुत कम हो गए। उदाहरणार्थ कांची जैन वैभव का महान् केन्द्र रहा। उसी भूमि में महान ज्ञानी आचार्य समंतभद्र का जन्म हुआ था। वहाँ आज जैनवैभव की उस प्रकार की सामग्री नहीं दिखती, जैसी कि उसकी कीर्ति तथा प्रसिद्धि रही है। हमारा तो यह अनुमान है कि साम्प्रदायिक विद्वेष की जब भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी तथा अगणित जैनों का संहार कार्य चल रहा था। उस समय बड़े–बड़े जैन वैभव स्थलों की काया पलट की गई। श्री टी. एन. रामचंद्रन डायरेक्टर पुरातत्त्व विभाग ने *'Jain Monuments of India'* पुस्तक में कांची और मदुरा के जैन मंदिरों आदि का इस प्रकार उल्लेख किया है। "The spread of jainism and the dissemination of jain ideals in the Tamil country received sufficient impetus on the advent of Kundakundacharya "evidently a Dravidian and the first in almost all the genealogies of the southern Jains" and is attested to by literary work such as the Kural of Tiruvalluvar, Manimekhalai and Silappadikaram. The spread of Jainism in the Tamil country is in on small measure due to "patronage it abtained at the Courts of Kanchi and Madura." At the time of the visits of Hiuen Tsiang to these cities, the former had a number of Deva temples of which the majority belonged to the Digambaras", and the latter had in it living a number of Digambaras."

श्री रामचन्द्र का यह कथन भी महत्त्वपूर्ण है–

"Whatever may be the controversial views entertained by historians today on the question of "the antiquity of Jainism" and the existence of

1. विशेष जानने हेतु देखीए 'कल्याण–2016–17 में ऋषभ भंडारी के लेख।

a"Jains period in the History of India" it is accepted on all hands that from the beginning of the Christian era down to the epoch-making conversion of hte Hoysals Visnuvardhana by the great Vaisnava Acharya Ramanuja in the twelfthe century, Jainism was the most powerful religion in the South." (p. 16)[1]

[2]जैन सेनापति बोप्पण को एक शिलालेख में बड़ा प्रतापी बताया है। पांचवीं से बारहवीं शताब्दी पर्यन्त मैसूर, मुंबई प्रांत एवं दक्षिण भारत में चालुक्यवंशीय जैन नरेशों का शासन था।[3] इनमें सत्याश्रय द्वितीय पुलकेशी नामक जैन नरेश का नाम विख्यात है। अपने शिलालेख में कालिदास का उल्लेख करने वाले जैनकवि रविकीर्ति द्वारा निर्मित ऐहोल के जिन मंदिरों को पुलकेशी ने सहायता प्रदान की थी। विमलादित्य. बिजयादित्य. विनयादित्य, तैलप, जयसिंह तृतीय आदि जैन नरेशों के शासन में जैनशासन खूब विकसित रहा। कलचुरि नरेशों में महामंडलेश्वर बिज्जल अपने पराक्रम और जिनेन्द्रभक्ति के लिये विख्यात थे। उनके पुत्र सोमेश्वर ने भी जैनधर्म की बहुत सेवा की । [3]जैन नरेश बिज्जल महाराज के मंत्री वसवराज ने लिंगायत धर्म की स्थापना की थी। उसने बिज्जल के प्राणहरण करने के लिए शीलहार नरेश से युद्ध करते समय छलकर विषदूषित आम खिलाए। किन्तु सुचतुर वैद्यों के प्रयत्न से बिज्जल की मृत्यु न हुई पश्चात् जब वसव का पता चलाया गया तब उसने कुएँ में गिरकर अपने प्राण गंवाए।

दोरसमुद्र (Mysore) के शासक होयसाल नरेश जैन थे। उन्हें सम्यक्त्व-चूड़ामणि, दक्षिण चक्रवर्ती आदि पदों से समलंकृत किया गया था। महाराज विनयादित्य के जिनभक्त पुत्र एरयंग महान् योद्धा थे, उन्होंने श्रवणबेलगोला के जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार कराया था। बल्लाल द्वितीय ने बारहवीं सदी में मैसूर में राज्य किया। इनकी महारानी शांतला देवी[4] ने श्रवणबेलगोला में सवतिगंधवारण वसदि (मंदिर) बनाकर वहाँ शांतिनाथ भगवान् की मनोज्ञ मूर्ति विराजमान कराई

1. Ibid.
2. The Chalukyas were without doubt the great supporters of Jainism.
-*V. Smith, His. of India,* p. 444.
3. King Bijjal ruled peacefully with glory. He built many Jain temples. His exploits as a warrior as well as supporter of the faith are well narrated in a Kanarese work called Bijjal Charite. He was succeeded by his son, Someshwara, who also was a supporter of Jainism and saved it from the onslaughts of the Lingayats. - *Rice, Mysore & Coorg.,* p. 79.
4. विशेष देखीए 'पट्टमहारानी शान्तला' पुस्तक।

थी। मैसूर का प्रसिद्ध चामुण्डी पर्वत[1] मारबल जैनतीर्थ के नाम से बारहवीं शताब्दी में प्रख्यात था। 'राजावलीकये' कन्नड ग्रंथ में कहा है कि बल्लालों की कुल–देवी पद्मावती का नाम चामुण्डेश्वरी पड़ा। शृंगेरी, जो शंकराचार्य का विशिष्ट स्थान है, जैनधर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था।[2] महराज नरसिंह के वीर सेनापति हल्ल ने श्रवणबेलगोला में सुन्दर जैन मंदिर बनवाए थे। होयसाल राज्य के अंतिम नरेशद्वय जैन थे। ईस्वी सन् 1960 के शिलालेख में राचमल्ल और मारसिंह द्वितीय के प्रधान सेनापति चामुंडराय का उल्लेख आया है। इनके विषय में कहा जाता है–[3]चामुंडराय से बढ़कर वीर सैनिक, जैनधर्मभक्त सत्यनिष्ठ व्यक्ति का कर्नाटक ने कभी भी दर्शन नहीं किया।'' जैनशास्त्रों में चामुंडराय की धार्मिकता की प्रशंसा की गई है। अपने जीवन में चामुंडराय को लगभग 18 बार युद्धस्थल में अपने पराक्रम को सफल प्रमाणित करने का अवसर प्राप्त हुआ। शौर्यमूर्ति चामुंडराय का साहित्यिक जीवन भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। संग्राम–भूमि में इन्होंने श्रेष्ठ अहिंसापूर्ण प्रवृत्ति करने वाले महामुनियों के धर्माचरण को समझाने वाला चारित्रसार नामक ग्रंथ लिखा। इनके समान [4]जिनधर्मभक्त सेनापति हल्ल और अमात्य गंग का नाम आता है। हल्ल ने श्रवणबेलगोला में चतुर्विंशति जिनालय बनवाया था।[5] दक्षिण भारत की जैन वीरांगनाओं में जक्कैयाबी. जक्कलदेवी. सवियव्वी. भैरवी देवी विशेष विख्यात हैं। महारानी भैरवी देवी ने युद्धभूमि में अपने प्रतिपक्षी के दांत खट्टे किए थे। इस प्रकार दक्षिण भारत का इतिहास और वहाँ के महत्त्वपूर्ण अगणित शिलालेख जैनवीर पुरुषों के पराक्रम तथा शौर्य को स्पष्टतया प्रतिपादित करते हैं।

श्रीविश्वेश्वरनाथरेऊकृत 'भारत के प्राचीन राजवंश' (पृष्ठ 227–28) और **रायबहादुर ओझाजी** के 'राजपूताना का इतिहास' (पृष्ठ 363) से विदित होता है

1. The well-known Chamundi hill near Mysore was once a Jain Tirtha- *Mediaeval Jainism,* p. 259.
2. "Another seat of Jainism was Sringeri" - *Mediaeval Jainism,* p. 206.
3. "A braver soldier, a more devout Jain, and a more honest man than Chamundraya, Karnataka Had never seen." - *Medieval Jainism,* p. 102
4. If it be asked who in the beginning were firm promoters of Jain doctrine (they were) Raya (Chanudaraya), the minister of Rachmalla, after him Ganga, the minister of king Vishnu, After him Hulla, the minister of king Narsimhadeva. If any other could claim as such, would they not be mentioned?

   - *Epi Carn, Ins. at Sravanbelgola,* p.85.
5. Minister general Hulla's contribution for the cause of Jain Dharma was the construction of famous Chaturvimsati Jinalaya at Sravanbelgola. *Ibid.* p. 142

कि वीरभूमि राजपूताना में शासन करनेवाले चौहान, सोलंकी, गहलौत आदि जैनधर्मावलंबी वीर पुरुष थे। अजमेर के नरेश पृथ्वीराज प्रथम ने जैनमुनि अभयदेव के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की थी। उसने रणथंभोर के जैनमंदिर की सुवर्णजड़ित दहलान बनवाई थी। पृथ्वीराज द्वितीय जैनधर्म के संरक्षक थे। उनके चाचा महाराज सोमेश्वर जैनधर्म के प्रेमी थे। सोलंकी नरेश अश्वराज तथा उनके पुत्र अल्हण देव जिनभक्त थे। परिहारवंशी काक्कुक नरेश कीर्तिशाली तथा जैनधर्मावलंबी थे। महाराज भोज के सेनापति कुलचंद्र जैन थे। सोलंकी नरेश मूलराज ने अनहिलवाड़ा में मनोज्ञ जिनमंदिर बनवाया था। प्रतापी नरेश सिद्धराज. जयसिंह के मंत्री मुञ्जल और शांतु जैन थे। महाराज कुमारपाल अनेक युद्ध-विजेता तथा जिनधर्म-भक्त थे। उन्होंने अशोक की भांति धर्मप्रचार में अपनी शक्ति लगाई थी; अनेक जैनमंदिरों का निर्माण तथा हजारों प्राचीन शास्त्रों का संग्रह कराया था। राठौर नरेश सिद्धराज जैन थे। मम्मट तथा धवल महाराज भी जैनधर्मी थे। मारवाड़क नरेश विजयसिंह के सेनापति डूमराज जैन ने अठारहवीं सदी के महाराष्ट्रों के साथ के युद्ध में प्रशंसनीय पराक्रम का परिचय दिया था। बीकानेर के दीवान एवं सेनानायक अमीरचंद जी जैन ने मटनेर वाले जबताखां को युद्ध में जीता था। वीरशिरोमणि जिनभक्त सोलंकी राज्य के मंत्री आभू ने यवनों को पराजित कर अपने राज्य को निरापद किया था। **स्मिथ और कनिंगहम** ने जिस वीर सुहलदेव को जैन माना है, उसने बहराइच में मुस्लिम सैन्य को पराजित किया था। उस समय यवन पक्ष ने बड़ी विचित्र चाल खेली थी। अपने समक्ष गोपंक्ति इकट्ठी कर दी थी। इससे गोभक्त हिंदूसैन्य और शासक किं-कर्त्तव्यविमूढ़ हो गए थे और सोचते थे-यदि हमने शत्रु पर शस्त्र-प्रहार किया तो गौवध का महान् पाप हमारे सिर पर सवार हो हमें नरक पहुँचाये बिना न रहेगा। ऐसे कठिन अवसर पर वीर सुहलदेव ने जैनधर्म की शिक्षा का स्मरण करते हुए आक्रमणकारी तथा अत्याचारी यवन सैन्य पर बाण वर्षा की और अंत में जयश्री प्राप्त की।

इससे यह बात प्रमाणित होती है कि भारतीय इतिहास की दृष्टि में जैनशासकों तथा नरेशों का पराक्रम के क्षेत्र में असाधारण स्थान रहा है। यदि भारतवर्ष के विशुद्ध इतिहास की, वैज्ञानिक प्रकाश में सामग्री प्राप्त की जाए और उपलब्ध सामग्री पर पुनः सूक्ष्म चिंतन किया जाए तो जैनशासन के आराधकों के पराक्रम, लोकसेवा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का ज्ञात होगा। विशुद्ध इतिहास, जो सांप्रदायिकता और संकीर्णता के पंक से अलिप्त हो यह प्रमाणित करेगा की कम से

कम समस्त भारत वर्ष में भगवान महावीर के पवित्र अनुशासन का पालन करने वाले जैनियों द्वारा भारतवर्ष की अभिवृद्धि में अवर्णनीय लाभ पहुंचा है। आज कहीं भी जैन धर्म के शासक नरेश नहीं दिखाई देते। इसका कारण एक यह भी रहा है कि देशों में जब भी मातृभूमि की स्वतंत्रता और गौरक्षा का अवसर आया है तब प्रायः जैनियों ने स्वाधीनता के सच्चे पक्ष का समर्थन किया और उसके लिए अपने सर्वस्व तथा जीवननिधि की तनिक भी परवाह न की। आज जो अनेक नरेश दृष्टिगोचर होते हैं उनकी भी वही गति होगी, जो भारतीय स्वाधीनता के लिए मर मिटनेवालों की हुई, अथवा भारत का इतिहास ही बदल गया होता, यदि वे अपने स्वार्थ को प्राधान्य दे विरोधी पक्ष से मिलकर साम्राज्य प्राप्ति का पुरस्कार पाने की स्वार्थपूर्ण नीति को न अपनाते। फूट के विष फैलने पर अनेक अवसरवादियों ने अपनी स्वार्थरक्षता का ध्यान किया, इसलिए वे विशेष उन्नतिशील दिखाई दिए। निजाम यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का Faithfully -ईमानदार साक्षी न बनता, तो अंग्रेजी राज्य में उन हजरत का भारतीय नरेशों में ऊँचा आसन न होता। हमारी तो धारणा है कि निजामी नीति पर न चलने के कारण यद्यपि अनेक जैन नरेश केवल इतिहास के पृष्ठों में स्मरणीय रह गये हैं, पर उनका अपने सिद्धान्त पर मर मिटना भी इस प्रकार के अस्तित्व से अच्छा है। आज कालचक्र के प्रसाद से जो नवीन परिवर्तन हुआ, वह सर्वत्र विदित है।

पूर्वोक्त विचार की पुष्टि वास्तविक घटनाओं से सम्बन्ध रखती है। जब हम दक्षित कर्नाटक पहुँचे थे, तब हमें मूडबिद्री (मंगलोर) में पुरातन जैनराजवंश के टिमटिमाते हुए छोटे से दीपक के समान श्रीयुत धर्मसाम्राज्यैया से यह समझने का अवसर मिला, कि किस प्रकार उन लोगों की राज्यशक्ति क्षीण और नष्ट हुई। उन्होंने बताया कि जब हैदरअली, टीपू सुल्तान आदि का अंग्रेजों से युद्ध चल रहा था, उस समय हमारे पूर्वजों ने अंग्रेजों का साथ नहीं दिया था और कूटनीति के प्रसाद से जब जयमाला अंग्रेजों के गले में पड़ी तब हम लोगों को अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा। इस प्रकार में यह बात दिखाई पड़ती है कि किस प्रकार जैन नरेशों को अपना अस्तित्व तक खोना पड़ा। स्वार्थियों की निगाह में जहाँ वे असफल माने जाएंगे, वहाँ स्वाधीनता के पुराजिरों के लिये वे लोग सुरत्व सम्पन्न दिखाई पड़ेंगे।

भारतवर्ष ने अपनी असहाय अवस्था में स्वाधीनता के लिये जो अहिंसात्मक राष्ट्रीय संग्राम छेड़ा है, उसमें भी जैनियों ने तन-मन-धन और जीवन के द्वारा राष्ट्र

की असाधारण सेवा की है। यदि राष्ट्रीय स्वाधीनता के संग्राम में आहुति देने वालों का धर्म और जाति के अनुसार लेखा लगाया जाए तो जैनियों का विशेष उल्लेखनीय स्थान पाया जाएगा। प्रायः स्वतंत्र व्यवसायशील होने के कारण जैनियों ने कांग्रेस के नेताओं की गद्दी पर बैठने का प्रयत्न नहीं किया और वे सैनिक ही बने रहे, इस कारण सेनानायकों की सूची में समुचित संख्या नहीं दिखाई पड़ती। सुभाष बाबू ने जो आजाद हिंद फौज का संगठन किया था, उसमें भी अनेक जैनों ने भाग लेकर यह स्पष्ट कर दिया कि जैनियों की शिक्षा संग्राम-स्थल में सत्य और न्यायपूर्ण स्वत्वों के संरक्षणनिमित्त साधारण गृहस्थ को सशस्त्र संग्राम से पीछे कदम हटाने को नहीं प्रेरित करती। आजादी के मैदान में वीरों को 'आगे बढ़े चलो' का ही उपदेश दिया गया है। जैनधर्म की शिक्षा वीरता को सजग करने की उपयुक्त मनोभूमिका तैयार करती है। आत्मा किस प्रकार संसार के जाल से छूटकर शाश्वतिक आनन्दमय मुक्ति को प्राप्त करे इस ध्येय की पूर्तिनिमित्त जैन साधक कष्टों से न घबरा कर विपत्ति को सहर्ष आमंत्रिण कर स्वागत के लिए तत्पर रहता है। **तत्त्वार्थ सूत्रकार** ने कहा है-'धर्ममार्ग से विचलित न हो जावें तथा कर्मों की निर्जरा करने के लिये कष्टों को आमंत्रण देकर सहन करना चाहिये।' भौतिक सुखों का परित्याग कर आत्मीक आनन्द के अधीश्वर जिनेन्द्रों की आराधना के कारण सांसारिक भोग-लालसा से विमुख होते कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को विलम्ब नहीं लगता, अतः सत्यपथ पर प्रवृत्ति निमित्त प्राणोत्सर्ग करना उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं रहती। **सिसरो** ने कहा है -

"No man can be brave, who thinks pain the greatest evil, not temperate, who considers pleasure the highest good." -''जो व्यक्ति कष्ट को सबसे बुरी चीज मानता है वह वीर नहीं हो सकता तथा जो सुख को सर्वश्रेष्ठ मानता है, वह संयमी नहीं बन सकता।''

इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि जैनधर्म की शिक्षायें वीरता के लिए कितनी अनुकूल तथा प्रेरक हैं। जो जरा भी सुखों का परित्याग नहीं कर सकता, वह जीवन उत्सर्ग की अग्नि-परीक्षा में कैसे उत्तीर्ण हो सकता है? जेम्स फ्रूड ने आज के भोगाकांक्षी तरुणों की इन शब्दों में आलोचना की है, "Young man dream of martyrdom and unable to sacrifice a single pleasure.

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म का शिक्षण पराक्रम और शौर्य से विमुख नहीं करता है। भारतवर्ष में जब तक जैन शिक्षा का तथा जैनदृष्टि का

प्रचार था, तब तक देश स्वतंत्रता के शिखर पर समासीन था। जब से भारतवर्ष के क्रूरता, पारस्परिक कलह, भोगलोलुपता तथा स्वार्थपरता की जघन्य वृत्तियों का स्वागत किया और साम्प्रदायिकता कि विकृत दृष्टि से वैज्ञानिक धर्मप्रसार के मार्ग में अपरिमित बाधाएँ डालीं तथा धार्मिक अत्याचार किए. तब से स्वाधीनता के देवता कूच कर गए और दैन्य, दुर्बलता तथा दासता का दानव अपना तांडव नृत्य दिखाने लगा। एक विद्वान ने जैन अहिंसा के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा था- ''यदि 35 लाख जैनियों की अहिंसा लगभग 100 कोटि मानव समुदाय की हिंसकवृत्ति को अभिभूत कर उस पर अपना प्रभाव दिखा सकती है, तब तो अहिंसा की गजब की ताकत हुई।'' ऐसी अहिंसा के प्रभाव के आगे दासता और दंभरूप हिंसकवृत्ति पर प्रतिष्ठित साम्राज्यवाद का झोपड़ा क्षणभर में नष्ट-भ्रष्ट हुए बिना नहीं रहेगा।

वास्तव में देखा जाए तो भारतवर्ष के विकास और अभ्युत्थान का जैनशिक्षण और प्रभाव के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। निष्पक्ष समीक्षक को यह बात सहज में विदित हो जाएगी। कारण जब जैनधर्म चंद्रगुप्त आदि नरेशों के साम्राज्य में राष्ट्रधर्म बन करोड़ों प्रजाजनों का भाग्यनिर्माता था, तब जहाँ यथार्थ में दूध की नदियाँ बहतीं थीं। दुराचरण का बहुत कम दर्शन होता था। लोगों को अपे घरों में ताले तक नहीं लगाने लड़ते थे। स्वयं की भूल और दूसरों के अत्याचारों के कारण जब से जैनशासन के ह्रास का आरंभ हुआ तब से उसी अनुपात से देश की स्थिति में अन्तर पड़ता गया।

प्रो. आयंगर सदृश उदारचरित्र विद्वानों के निष्पक्ष अध्ययन से निष्पन्न सामग्री से ज्ञात होता है कि जैनधर्म, जैनमंदिर , जैन शास्त्रों तथा जैनधर्माराधकों का अत्यन्त क्रूरतापूर्वक रीति से शैव आदि द्वारा विनाश किया गया है। वे लिखते हैं कि, 'पेरियपुराणम्' में वर्णित शैव विद्वान् तिरुज्ञान संबंधर के चरित्र से ज्ञात होता है कि पांड्य नरेश ने जैनधर्म का परित्याग कर शैवधर्म स्वीकार किया और जैनों पर ऐसा अत्याचार किया कि [1]जिसकी तुलना में योग्य दक्षिण भारत के धार्मिक आंदोलनों के इतिहास में सामग्री नहीं मिलेगी। संबंधर रचित प्रति दस पद्य में एक ऐसा मार्मिक पद्य है जो जैनियों के प्रति भयंकर विद्वेष को व्यक्त करता है। इस

1. The Jains were also persecuted with such rigour and curelty that is almost unparalled in the history of religous movement in South India. The soul-stirring hymns of Sambandhar, every tenth verse of which was devoted to anathematise hte Jains clearly indicate the bitter nature of the struggle. -J.G. p. 154.

पांड्य नरेश का समय 650 ईस्वी अनुमान किया जाता है। ऐसे ही अत्याचारों के कारण जैनधर्म पल्लव नरेशों के यहाँ अत्यधिक विपत्ति से आक्रान्त हुआ। जैनधर्म के परम विद्वेषी संबंधर के प्रयत्न से जैनों के हिन्दुओं द्वारा संहार के चित्र मदुरा के मीनाक्षी मंदिर के स्वर्णकमल युक्त सरोवर के मंडप की दीवार से सुरक्षित रखे गए। [1]इतने मात्र से संतुष्ट न होने के कारण ही मानो उस दुर्घटना का अभिनय वर्ष में होने वाले द्वादश उत्सवों में से पाँच उत्सवों में किया जाता है।[2]

श्री कण्ठशास्त्री ने राजावली कथे के आधार पर लिखा है कि ''कुन पाण्ड्य नरेश ने पाण्ड्य देश में 985 तथा केवल मथुरा (मदुरा) में ही 50 वस्तियों को नष्ट किया था। जैन मंदिर को 'वस्ती' कहते हैं। **उसने पाण्ड्यों के कुल देवता नेमिनाथ को छिपा दिया था और नेमिनाथ की शासन देवी कूष्मांडिनी का नाम मीनाक्षी रखा। वहाँ के आंडियों ने जैनियों को कड़ा क्लेश पहुँचाया और भाले–बर्छे का पर्व मनाया।'' एक कन्नड़ विद्वान ने मद्रास में हमसे कहा था कि मीनाक्षी मंदिर जैन मंदिर था।** उसके समीपवर्ती प्राचीन जैन सामग्री उक्त निश्चय में सहायक है।

[3]**वसवराज के नेतृत्व में लिंगायतों ने कलचूर्य राज्य से जैनियों का 12वीं सदी के अंत में संहार किया और लाखों जैनों की लींगायत में धर्म परिवर्तन करवाया गया।**

वासव ने कालिका की उपासना से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कीं थीं। उसने अपने **भतीजे चेन्नवासव से छह हजार सात सौ जैन मंदिरों को नष्ट कराकर वीर शैव मत का प्रचार किया था।** यह कथन राजावलिकथे से ज्ञात होता है। (राजावली कथा में जैन परंपरा)

तिरुज्ञान संबंधर के समय में अप्परस्वामी एक और शैव साधु ने जैनधर्म के संहार कराने में अग्नि में घृताहुति का कार्य किया। [4]अप्परस्वामी के बारे में कहा जाता है, कि वह पहले जैन था, पश्चात् एक विशेष घटना से अप्परस्वामी ने

1. As though this were not sufficient to humiliate that unfortunate race, the whole tragedy is enacted at five of the twelve annual festivals at the Madura temple. p. 167.
2. विशेष देखीए इसी पुस्तक का 4th व 5th अनुक्रम।
3. At the close of the 12th cen. the Lingayatas under the leadership of Basava persecuted the Jains in the Kalachurya dominion. P. 26
4. देखो – 'साप्ताहिक भारत'– पेज 6, 10 नवम्बर स. 47–अप्पर स्वामी पर लेख।

शैवधर्म अंगीकार कर लिया।[1] इस कार्य में उनकी बहन की बड़ी तत्परता रही। अप्परस्वामी के पेट में एक बार बड़ी पीड़ा उठी, अप्परस्वामी ने शिव मंदिर में पहुँचकर शिव की भक्ति की, इससे पेट की पीड़ा दूर हो गई, और वह कट्टर शैव हो गया। सांप्रदायिकों ने यह प्रयत्न किया कि उन लोगों की जैन हिंसिनी नीति पर आवरण पड़ जाए, और उल्टा जैनियों को उनके हिंसक के लिये प्रयत्नशील रहने का दोषी बनाया जाए, किन्तु मदुरा के मीनाक्षी मंदिर की जैन संहार की चित्रावली, संहार स्मृति उत्सव मनाना तथा 'पैरियपुराणम्' में जैनधर्म के प्रति विषपूर्ण उद्गार प्रोफेसर आयंगर के इस कथन को पूर्णतया सत्य प्रमाणित करते हैं कि इनके निमित्त से जो संहार का कार्य हुआ है वह ऐसा भयंकर है, कि उसकी तुलना की सामग्री दक्षिण भारत में कहीं भी नहीं मिलेगी।

आज जैनधर्म के आराधक थोड़ी संख्या में रह गए और अन्य धर्मपालकों की जनगणना में असाधारण अभिवृद्धि हुई। यदि आत्मविकास और अभ्युदय के तत्त्व जैनधर्म के शिक्षण मे न होते तो देश के ह्रास और विकास के साथ अनुपात संबंध अथवा अन्वय-व्यतिरेक भाव नहीं पाया जाता । जिस जैनशासन में ईश्वर की दासता को भी स्वीकार न कर बौद्धिक और आत्मिक स्वाधीनता का चित्र विश्व के समक्ष रखा; जिस शिक्षण के द्वारा अगणित आत्माओं ने कर्म-शत्रुओं का संहार कर परम-निर्वाण रूप स्वाधीनता प्राप्त की, उस धर्म के शिक्षण में व्यक्तिगत व राष्ट्र के पतन का अन्वेषण मृग का मरीचिका में पानी देखने जैसा है।

महापुराण में लिखा है, जितेन्द्रिय नरेन्द्र का कर्त्तव्य प्रजा का पालन करना हैः- 'प्रजानुपालनं प्रोक्तं पार्थिवस्य जितात्मनः।' वह युद्ध को प्रिय वस्तु नहीं मानता क्योंकि 'जनक्षयाय संग्रामो बह्वपायो दुरुत्तरः' संग्राम में बहुत लोगों का ध्वंस होता है, उसमें अनेक हानि होती है और उसका भविष्य भी अच्छा नहीं होता। किन्तु उचित उपायान्तर के अभाव में शासन को शस्त्र का प्रयोग करना परमावश्यक हो जाता है। यदि वह प्रजा का परित्राण न करे तो सर्वत्र अशान्ति और दुःख व्याप्त हो जाएगा। सत्पुरुष दुःखी होंगे तथा धूर्त एवं पाली लोगों का बोलबाला हो जाएगा। इसलिए शासक न्याय दृष्टि को आदर्श बना अपने परम इष्ट का भी निग्रह करने में मोह बुद्धि धारण नहीं करता है। जिनसेनाचार्य ने लिखा है-

द्विषन्तमथवा पुत्रं निगृह्णन् निग्रहोचितम्।

---

1. विशेष के लिए इसी पुस्तक का 5th अनुक्रम देखीए।

अपक्ष पतितो दुष्टं इष्टं चेच्छन्ननागसम्।।42-200।।

राजा निग्रह करने योग्य शत्रु अथवा पुत्र दोनों का निग्रह करता है। उसे किसी का पक्षपात नहीं है। वह दुष्ट तथा मित्र सभी को निरपराध बनाने की इच्छा करता है। दुष्ट और शिष्ट का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है-

दुष्टा हिंसादि दोषेषु निरताः पापकारिणः।
शिष्टास्तु क्षान्तिशौचादिगुणैर्धर्मपरा नराः ।।42-203।।

जो व्यक्ति हिंसा आदि पंच पापों में तत्पर हो पाप कार्य करते रहते हैं, वे दुष्ट कहलाते हैं, तथा जो क्षमा, संतोष आदि गुणों द्वारा धर्म ग्रहण करने में तैयार होते हैं, वे शिष्टजन कहे जाते हैं।

वास्तव में शान्ति, लोककल्याण तथा धर्म के पथ में कण्टकरूप बनने वालों का उच्छेद करना अहिंसा की अभिवृद्धि करना है। विवेकी व्यक्ति जैसे मार्ग में पड़े हुए कण्टक को दूर करते हुए सर्वसाधारण तथा स्वयं को व्यथित होने से बचाते हैं, उसी प्रकार छात्र वृत्ति को धारण करने वाला जैन दुष्टता के उच्छेद हेतु कठोरतापूर्वक दुष्टों का दमन करना आवश्यक कर्त्तव्य मानता है। इस प्रसंग में जस्टिस जैनी के शब्द अति महत्त्वपूर्ण हैंः-

"Non-killing cannot interfere with one's duties. The king or the judge has to hang a murderer. The murderers act in the negation of a right of the murdered. The king's or the judge's order is the negation of this negation, and is enjoined by Jainism as a duty. Similarly, the soldier's killing on the battlefield. It is only prejudiced and garbled accounts of Jainism that have led to its being misunderstood." (*Outlines of Jainism,* P. 72)-अहिंसा से कर्त्तव्यपालन में तनिक भी बाधा नहीं आती हैं। राजा या न्यायाधीश को हत्या करने वाले को प्राणदण्ड देना ही पड़ता है। हत्यारे ने प्राण घात कर मृत व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अधिकार को नष्ट किया। राजा या न्यायधीश का आदेश इस हत्यारे के प्राणघात कार्य के कारण उसके जीवन का निषेध रूप होता है। अर्थात् हत्यारे ने प्राणघात किया, इससे वह प्राणघात द्वारा दण्डित किया गया। ऐसा करना जैन धर्म की दृष्टि से कर्त्तव्य है। यही बात सैनिक द्वारा युद्धभूमि में किए प्राणघात के विषय में चरितार्थ होती है। जैनधर्म के विषय में पक्षपात तथा विकृति पूर्ण कथन के कारण लोग उसके बारे में भ्रान्त धारणा कर लेते हैं।

जैनधर्म में वर्णित उपरोक्त हिंसात्मक पद्धति का निषेध इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि उस कठोर पद्धति के द्वारा लोक जीवन में अहिंसा और अभय प्रतिष्ठापित होते हैं। यदि दण्ड शिथिल हो तो भयंकर अव्यवस्था उत्पन्न होकर पुण्य जीवन व्यतीत करना असम्भव हो जाएगा। चिकित्सक अपने प्राण प्रिय इकलौते बेटे के अंग विशेष को जब भयंकर रोगयुक्त देखता है और यदि उसका तत्काल ऑपरेशन न किया जाए तो उसके अन्य अंग भी उसी प्रकार व्याधिग्रस्त हो जायेंगे, इसलिए वह अपने पुत्र के उस अंग को भीषण शस्त्र द्वारा भिन्न करने में तनिक भी संकोच नहीं करता। इसी प्रकार की दृष्टि न्यायाधीश की रहती है। वह हिंसा की बीमारी बढ़कर समस्त समाज को रोगाक्रान्त न कर दे, इसलिए मजबूत होकर उस दूषित तत्त्व के उच्छेद के लिए उसे कठोर नीति अंगीकार करनी पड़ती है। व्यक्ति विशेष के प्रति वह अवश्य कठोर लगता है, किन्तु उसका कार्य सार्वजनिक दया का अंग है। इस प्रकार का कार्य करने वाला व्यक्ति अपने विचार, बुद्धि तथा अन्तःकरण को निर्मल तथा परिशुद्ध रखने के उद्देश्य से वह अपने जघन्य स्वार्थों की उपेक्षा कर मद्य–मांसादि सेवन से विमुख रहता है। इसलिए वह शिकार करना आदि निकृष्ट कार्यों से परावृत्त होता है।

जैन धर्म का पतन और पुनरुत्थान

विभिन्न क्षेत्रों में जैन धर्म का पतन अलग-अलग काल में हुआ। इसके साधारण और विशिष्ट दोनों कारण थे। शुंगों के अधीन उत्तर में ब्राह्मण धर्म की पुनरावृत्ति के कारण जैन धर्म का पतन हुआ। दक्षिण में यह धर्म वहाँ के कट्टरपंथी राजाओं के अधीन लिंगायत और वीर शैवों के अत्याचारों के कारण नष्ट हुआ। जैन धर्म का ह्रास रूढ़िवादी ब्राह्मणों के कारण भी हुआ। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भी जैन मंदिरों, मूर्तियों और जैन ग्रंथ भंडारों को नष्ट किया। मुस्लिम शासन में श्रावकों के लिये अपने धर्म पालन करना कठिन था। जैन धर्म में धार्मिक और सामाजिक विभाजन भी हो गये थे। अनेक उलट-फेर होने के उपरांत भी जैन संतों और श्रावकों के उच्च चरित्र के कारण जैन धर्म का अस्तित्व बना रहा और आज इसका प्रचार-प्रसार विदेशों में भी हो रहा है।

पतन के कारण

1. **शुंगों के अधीन ब्राह्मण धर्म की पुनरावृत्ति (लगभग 187-75 ई. पू.) –** अंतिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ मौर्य का वध करने के पश्चात् पुष्पमित्र शुंग वंश का संस्थापक हुआ। उसने दो अश्वमेघ यज्ञ किये । वह कट्टर ब्राह्मण था। उसने जैन और बौद्ध साधुओं का वध करवाया। यह मान्यता बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान[1] के कथन के आधार पर निर्भर है जिसके अनुसार उसके प्रत्येक साधु के सिर की कीमत 100 दीनार रखी थी। उसने बौद्धों और जैनियों को निर्दयतापूर्वक मारा। कहा जाता है कि वह मगध से लेकर पंजाब में जालंधर तक मठों और साधुओं को नष्ट करने के लिये उत्तरदायी था। बिहार में भी जैन धर्म पुष्यमित्र के आक्रमणों से बहुत अधिक प्रभावित हुआ।

2. **गुप्त काल में जैन धर्म को राजकीय सहयोग प्राप्त न होना–** साम्राज्यवादी गुप्त शासक ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे। इनमें से कुछ ने अश्वमेघ यज्ञ भी किये थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय अपने आपको परम भागवत के नाम से सम्बोधित करता था और वैष्णव धर्म के उत्थान के लिये उसने काफी प्रयत्न किए। जैन धर्म को साम्राज्यवादी गुप्त सम्राटों से कोई राजकीय सहयोग नहीं मिला। गुप्तकाल के कुछ ही जैन अभिलेख उपलब्ध होते हैं।

---

1. अध्याय XXIX. पृ. 134.

शशांक गौड (बंगाल) का शासक था। बौद्धों पर उसके अत्याचार के कथानक मिलते हैं जिनका वर्णन युवानचांग ने किया है। यह भी संभव हो सकता है कि शशांक के हाथों से जैन धर्म को भी नुकसान पहुंचा हो। गुप्तकाल में राजकीय सहयोग नहीं मिलने से जैन धर्म समृद्ध नहीं हो सका।

3. **मिहिरकुल के अत्याचार (लगभग 515 ई.)–** हूण आक्रमणकारी मिहिर कुल एक महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने अधिकतर उत्तर भारत के हिस्से को रौंद डाला था। वह शैव धर्म का कट्टर अनुयायी था। राजतरंगिणी में मिहिरकुल के अन्याय और अत्याचार की कहानियाँ हैं। युवानचांग के अनुसार वह बौद्धों को उत्पीड़ित करने वाला था और उसने मठों को नष्ट किया। इस प्रकार राजतरंगिणी में सुरक्षित मिहिर कुल के अत्याचार की कहानियाँ युवानचांग के वर्णन से भी मिलती है। यह संभव लगता है कि मिहिरकुल ने मथुरा के जैन स्तूपों, मंदिरों और मूर्तियों को भी नष्ट किया हो जैसाकि पुरावशेषों से जानकारी मिलती है। साहित्यिक और पुरातात्त्विक पुराणों से ज्ञात होता है कि छठी से दसवीं शताब्दी तक उत्तर भारत में जैन धर्म का धीरे–धीरे ह्रास होता गया। बिहार, बंगाल और उड़ीसा में जैन धर्म लुप्त होना शुरु हुआ। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में जैन धर्म के अस्तित्व की सीमित सामग्री मिलती है।

4. **वीर शैव और श्री वैष्णव आचार्यों की प्रवृत्तियाँ –** सातवीं शताब्दी के पश्चात् दक्षिण के सब भागों में शैव धर्म का एकाएक उत्थान हुआ। वीर शैव और वैष्णव आचार्यों की आक्रामक धार्मिक प्रवृत्तियों से जैन धर्म का पतन हुआ। दक्षिण के अलग–अलग क्षेत्र जैसे तमिल, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में विशेष कारण थे जिसकी वजह से जैन धर्म का पतन हुआ। इसका क्रमशः सामान्य पतन वृहत् पैमाने पर तेरहवीं सदी में माना जा सकता है।

विभिन्न क्षेत्रों में पतन के विशेष कारण

तमिलदेश –

जैन धर्म को तमिलदेश में बड़े विरोध का सामना करना पड़ा। यह समय सातवीं और आठवीं शताब्दी से शुरू हुआ और उसके विरोधी ब्राह्मण और शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के नेता थे। करीब उसी समय अप्पर और संबंधर के नेतृत्व

में शैव धर्म के प्रवर्तकों ने जैन धर्म के अनुयायियों पर निर्दयता से आक्रमण किया। पल्लव और पाण्डव राज्यों में भी उनको अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन प्रथम और पाण्डव राजा मारवर्मन या सुन्दर पाण्डव ब्राह्मण धर्म में परिवर्तित हो गये।

इससे जैन धर्म को बहुत बड़ा धक्का लगा। जैन धर्म को चुनौती दी गई। जैन धर्म के बारे में प्रश्न चिन्ह लगाया गया और जैन धर्म की क्रियाओं को सब जगह बुरा कहा गया। वाद–विवाद उठे, विरोधी सम्प्रदायों में आपस में उच्चता के लिये झगड़े भी खड़े हुए। प्रमाण मांगे गये और कभी–कभी दिव्य परीक्षा और चमत्कारों का भी प्रयोग किया गया। विजेता होने वाला राज्य सत्ता के पक्ष के कारण अन्याय व अत्याचार के कृत्यों में भाग लेता था। हारे हुए का पीछा किया जाता था और उनको मार भी दिया जाता था।[1]

जैन धर्म के घोर विरोधी प्रसिद्ध साधु तिरुज्ञान सम्बन्दर के बहकाने पर सातवीं सदी के मध्य के पाण्डव वंश के सुन्दर राजा ने बड़ी निर्दयता से आठ हजार निर्दोष जैन साधुओं को बुरी तरह मार दिया। इस खूनी घटना की स्मृति लगातार जीवित रखी गई। मदुराई के प्रसिद्ध मीनाक्षी मंदिर की दीवारों के चित्रों द्वारा यह प्रगट होता है। केवल इसी घटना से जैनियों को नीचा नहीं दिखाया गया बल्कि मदुराई मंदिर के बारह वार्षिक पर्वों के पाँच पर्वों में श्रावकों को जुलूस में दंडित करते हुए भी दिखाया गया है।[2]

पेरियपुरम् और अन्य ब्रह्मणों के साहित्यिक ग्रंथों में जैनियों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन किया गया है। इस समय में इनका बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन किया गया है। मदुरा के स्थल पुराण में जैनियों और शैव अनुयायियों के विरोधी संबंधों का वर्णन किया गया है।[3] ब्राह्मण आचार्य शंकराचार्य ने जैन धर्म के सिद्धांतों का कड़ा विरोध किया। पाटन की अनुश्रुतियों में वर्णन मिलता है कि शंकराचार्य ने नगर के अनेक साधुओं को पीड़ित किया और जिस स्थान पर यह घटना घटी वह 'लाचोचार' के नाम से जाना जाता है।

---

1. **पी. वी. देसाई.** जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स पृ. 81–82।
2. ए. संघवे विलास जैन कम्युनिटी – ए सोशल सर्वे, पृ. 386–87
3. **पी. वी. देसाई.** जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स पृ. 81–82।

आन्ध्रप्रदेश–

विजयवाड़ा के परिच्छेदी पशुपति शासक, धन्य कटक के कोट राजा और वारंगल के काकतीय आंध्र प्रदेश से जैन धर्म को लुप्त कराने के लिये उत्तरदायी है।[1] तेलुगू देश में जैनियों का सबसे बुरा समय वारंगल के काकतीय राजा गणपति देव (1199–1290 ई.) का था जिसके परिणामस्वरूप तेलुगू महाभारत के लेखक टिकन सौमय्य के हाथों धार्मिक वाद–विवाद में हार हुई जिससे जैनियों ने अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति को खो दिया।[2] 1071–72 ई. के एक अभिलेख में चोल सेना द्वारा युद्ध के दिनों में जैन मंदिरों के नष्ट होने का विवरण है।[3]

दो अभिलेखों[4] से हमें वीर शैवाचार्य एकान्तद रामय्य के बारे में जानकारी मिलती है जिसने कलचुरि राजा विज्जल को प्रभावित करके जैनियों पर बहुत बड़े अत्याचार किये। उसने जैन मूर्ति को फेंक दिया और अब्लूर में शिवलिंग स्थापित कर दिया। उसने एकान्तर रामय्य को विजय–पत्र प्रदान करके प्रोत्साहित किया।[5] इसी अभिलेख से यह जाना जाता है कि अंतिम चालुक्य राजा सोमेश्वर चतुर्थ वीर शैव धर्म का अनुयायी हो गया। वह भी जाना जाता है कि जैन मंदिरों के अवशेषों से विष्णु और शिव के मंदिर निर्मित किये गये। आंध्र प्रदेश की अन्मकोंड की पहाड़ी का पद्मावती मंदिर ब्राह्मणों के अधिकार में आ गया।[6] कोल्हापुर के महालक्ष्मी मंदिर में पार्श्वनाथ के मंदिर से संबंधित अभिलेख इस मंदिर के स्तम्भों पर अंकित है।[7]

आंध्रप्रदेश[8] में जैन धर्म के इतिहास का अवलोकन करने पर पता चलता है कि किस प्रकार कैफ़ियत और स्थानीय विवरण अनेक स्थानों का उल्लेख करते हैं और यह भी बतलाते हैं कि किस प्रकार से जैनियों का वध किया जाता था।

1. ए. संघवे विलास, जैन कम्युनिटी – ए सोशल सर्वे पृ. 387.
2. बी. ए. सेलीटोर, मेडिवल जैनिज्म विथ स्पेशल रेफरेन्स टू विजयनगर एम्पायर. पृ. 272
3. जै. शि. सं. IV पृ. 25.
4. वही. III सं. 435–36
5. वही. III सं. 435
6. वही. IV सं. 117
7. वही IV सं. 222
8. **पी. वी. देसाई.** जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स पृ. 40

जैनियों के विरुद्ध घृणा फैलाई जाती थी और उन्हें तंग किया जाता था। यह क्रम सोलहवीं सदी तक चला। इसका पता श्री शैलम के अभिलेख से लगता है जिसमें बतलाया गया है कि वीर शैव राजा श्वेतांबर जैनियों के मस्तक काटकर अपनी इन उपलब्धियों के लिये गौरवान्वित होता था।

अन्य अभिलेखों से भी इसी प्रकार का प्रमाण मिलता है। श्री शैलम के समीप एलमपल्ले के 1529 ई. के अभिलेख से ज्ञात होता है कि किस प्रकार से मल्लिकार्जुनदेव के अनुयायी ने षट्दर्शन स्थापित किये और जो श्वेताम्बर जैनियों के मस्तकों के प्रति जानलेवा था।

कर्नाटक–

कर्नाटक में जैन धर्म के आश्रयदाता वंश जैसे राष्ट्रकूट, गंग और होयसल का राजनैतिक पतन हो गया। इन्होंने बहुत लम्बे समय तक जैन धर्म के उत्थान में योगदान दिया। इन राजवंशों के पतन से जैन धर्म को बहुत बड़ा धक्का लगा।

कर्नाटक में भी जैन अपने पूर्वजों के धर्म का शांतिपूर्वक अनुसरण नहीं कर सके विशेषकर एकान्तद रामय्य की सैनिक प्रवृत्तियों के कारण। इसकी जानकारी हमें समकालीन साहित्य अभिलेख और मूर्तियों से होती है। जिस धर्म का बड़ा नुकसान एकांतद रामय्य ने किया उसको वीर गोग्गी देव और वीरू पारस ने और अधिक भड़काया।

वीरबणजिगा व्यापारी वर्गों का जैन धर्म से वीर शैव में परिवर्तन होने से भी जैन धर्म पतन की ओर जल्दी से अग्रसर हुआ। इस प्रकार कर्नाटक में अनेकांत मत का राजनैतिक बुद्धिमानी से पतन हो गया। इसमें संदेह नहीं कि वीरबणजिगा में बहुत वर्षों से कर्नाटक के मध्यम वर्ग के शक्तिशाली और समृद्ध लोग थे। उनकी स्वामीभक्ति और समृद्धि ने कर्नाटक में जैनियों की कला और स्थापत्य की उन्नति में भी योगदान दिया और उनकी प्रतिष्ठा और वैभव भी बनाये रखा। जब बसव के अनुयायियों ने व्यापारी वर्ग के लोगों को अनेकांत मत से विमुख किया तो कर्नाटक में जैन धर्म का अस्तित्व रहना कठिन हो गया। अन्य वर्ग के लोगों में इतनी क्षमता नहीं थी कि वे जैन धर्म की सुरक्षा कर सकें। केवल वीरवणजिगा ही जैन धर्म को बचा सकते थे।

इस समय सामन्त परिवारों का भी जैन धर्म से वीर धर्म में परिवर्तन हुआ।

बसव के क्रूर तरीकों ने भी जैन धर्म को बड़ी क्षति पहुँचाई क्योंकि शैवाचार्यों ने इसके लिये उन्हें प्रोत्साहन दिया। उसके उत्तराधिकारियों ने शान्त तरीकों से सान्तरों, चंगवाल, कारकल के भैख ओडेयर्स, कुर्ग के राजा और अन्य छोटे राजाओं को जैन धर्म से वीर शैव धर्म की ओर आकर्षित किया। इस प्रकार से राजकीय लोगों और सामन्तों को शैव धर्म में परिवर्तित किया गया जिसकी जानकारी प्रसिद्ध वीर शैव आचार्य एकान्तद रामय्य के विवरण में बतलाई गई है। केसीराज चम्पू 1195 ई. के अंकित अभिलेख में इसका वर्णन करता है।

जैन प्रचारक ब्राह्मण धर्म की पुनरावृत्ति विशेषकर वीर शैव धर्म के प्रति विमुख रहे जिसके परिणामस्वरूप जैन धर्म के हितों को बड़ा नुकसान पहुँचा। इस समय जैन धर्म ऐसे आचार्य उत्पन्न नहीं कर सका जो कर्नाटक में ब्राह्मण धर्म के अगुवाओं के कारण पुनरावृत्ति को समझ सके जैसाकि तमिलदेश में नयनारों ने किया था।[1]

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जैनियों को बहुत तंग किया गया। इस कारण उन्होंने अपनी रक्षा के लिये विजयनगर के राजाओं से प्रार्थना की। विजयनगर के राजा बुक्क प्रथम ने मध्यस्थता की और राज्य में जैनियों के पक्ष में परिस्थितियां पैदा कर दीं।[2]

बिहार–

चोल सैनिक राजेन्द्र चोल के नेतृत्व में आक्रमण करने के लिये आगे बढ़े और 1023 ई. में बंगाल के महिपाल को हराकर लौटे तो उन्होंने मानभूम जिले में जैन मंदिरों और मूर्तियों को नष्ट किया।[3] पाण्ड्य कट्टर मूर्तिभंजक थे। इस क्षेत्र में लिंगायत शैव धर्म के उत्थान से भी छोटा नागपुर क्षेत्र में जैन धर्म का पतन हुआ।[4]

इसमें संदेह नहीं कि मुसलमानों के आक्रमण ने बिहार में जैन धर्म के डांवाडोल ढांचे को अंतिम धक्का दिया। उनके आक्रमण के समय मुहम्मद–बिन–बख्त्यार ने बंगाल और बिहार को जीत लिया और अनेक मंदिरों को धराशायी कर

1. बी. ए. सेलीटोर मेडिवल जैनिज्म विथ स्पेशल रेफरेन्स टू विजयनगर एम्पायर पृ.
2. **पी. वी. देसाई.** जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स पृ.
3. आज भी मानभूम में हजारों मूर्तियाँ यत्र–तत्र दीखाई देती है।
4. पी. सी. राय चौधरी, जैनिज्म इन बिहार, पृ. 59

दिया। उनके आक्रमणों के कारण जैन धर्म को बहुत नुकसान हुआ और उनके अनुयायियों की संख्या कम हो गई।[1]

चोल राजा राजेन्द्र देव और मुहम्मद–बिन–बख्त्यार के आक्रमणों के कारण सिंघभूम और मनभूम (धनबाद) जिले शेष जैन समुदाय से अलग हो गये। यद्यपि इन जिलों के लोगों ने अपने धर्म को बदल लिया किंतु उन्होंने अपनी परम्पराओं को बनाये रखा। वे अपने आप को श्रावक या सराक[2] कहते थे। केवल इनकी प्राचीन परम्परा ने ही उनके प्राचीन विश्वास को कायम रखा जो जैन धर्म था।

ग्यारहवीं सदी में रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक के लेखक का कहना है कि ब्राह्मणों के अत्याचारों के परिणामस्वरूप जैन पंचाल, मालवा, अबूर और आनर्त की ओर चले गये। यह नाटक चन्देल राजा कीर्तिवर्मन की राज्यसभा में खेला गया था और इसलिये इसके प्रमाण का वास्तविक महत्त्व है। ऐसा विश्वास करना ठीक लगता है कि 1000 ई. तक बिहार क्षेत्र के बहुत से स्थानों से जैन धर्म पूरा लुप्त हो गया था।[3]

प्राचीन समय में ऐसा बौद्धिक विघटन हुआ कि जैन अपनी वास्तविक अनुश्रुतियों को भूल गये और जैन तीर्थंकर महावीर के वास्तविक जन्म–स्थल को भी भूल गये। दिगम्बर जैन लेखक मदनकीर्ति (तेरहवीं सदी) अपने काव्य ग्रंथ 'शासन चतुष्विंशतिका' में 26 जैन तीर्थों का वर्णन करता है किन्तु उसमें कुण्डपुर या वैशाली का उल्लेख नहीं मिलता है। 'विविध तीर्थकल्प' के लेखक जिनप्रभ सूरि ने भी उत्तर बिहार के जैन केन्द्रों, जिनमें वैशाली भी शामिल है, को कोई महत्त्व नहीं देता। बाद का श्वेतांबर ग्रंथ तीर्थ माला चैत्य वंदना (सत्रहवीं सदी) जो 76 प्राचीन जैन तीर्थों का उल्लेख करता है, वैशाली या कुण्डपुर के नाम नहीं देता है। लोग उज्जयिनी को ही विशाला या वैशाली मानने लगे और उज्जैन के समीप बदनावर को वर्द्धमानपुर।

कुछ अन्य सामान्य कारण

विभिन्न क्षेत्रों के विशेष कारणों के अतिरिक्त जैन धर्म के पतन के सामान्य कारण भी थे–

1. बी. के. तिवारी, हिस्ट्री ऑफ जैनिज्म इन बिहार पृ.
2. सराक जाति के विषय में विशेष पढ़ने हेतु देखीए 'जैनत्व जागरण भाग–1'।
3. के. हि. जै. पृ. 169

1. **मुस्लिम आक्रमण –** मुस्लिम आक्रमणों ने भी जैन धर्म को नुकसान पहुँचाया। भारत पर आक्रमण करते समय महमूद गज़नबी ने शहरों के जैन मंदिरों को नष्ट किया। 1009 ई. में उसने नारायण (नरेणा) के विरुद्ध सेना भेजी और बड़ी निर्दयता से जैन मूर्तियों का विध्वंस किया। शायद 1024 ई. में लोद्रवा के चिंतामणि पार्श्वनाथ के मंदिर को नष्ट किया। जब उसने अपनी सेना के साथ सोमनाथ पर आक्रमण किया तब सांचोर और चन्द्रावती के जैन मंदिर उसकी सेनाओं के द्वारा लूटे गये। मथुरा और कन्नौज पर आक्रमण करते समय उन्होंने इन नगरों के जैन मन्दिरों को भी नष्ट किया।

   मोहम्मद गोरी ने 1178 ई. में पश्चिमी राजस्थान पर आक्रमण किया और 1192 ई. में सपादलक्ष के अनेक जैन मंदिरों को नष्ट किया।[1] उपकेश गच्छ प्रबंध से यह ज्ञात होता है कि मोहम्मद गोरी की सेना ने चलते हुए 1195 ई. में ओसिया को नष्ट किया। ऐसा ज्ञात होता है कि मोहम्मद गोरी के हाथों चौहानों की हार से अजमेर, सांभर, नाडोल, नरहड और बयाना के जैन मंदिरों को बड़ा नुकसान पहुँचा। तेरहवीं सदी के लेखक मदनकीर्ति अपने ग्रंथ शासन चतुष्विंशतिका में सूचित करते हैं कि किस प्रकार से इल्तुतमिश ने मालव देश के[2] मंगलपुर के अभिनंदन तीर्थ को नष्ट किया। अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं में क्रूरता से मूंगथला, जीरावल, आबू, चित्तौड़, रणथम्भौर, जालौर और अन्य स्थानों के जैन मंदिरों को नष्ट किया । बाबर के आदेशों से मीर बक्शी ने ग्वालियर के समीप उर्वा[3] की जैन मूर्तियों को नष्ट किया। मुगल सैनिकों ने सिरोही क्षेत्र में भी बहुत अत्याचार किये और 1576 ई. में 1000 से अधिक कांसे की जैन मूर्तियों को अपने साथ ले गये।[4]

2. **मुस्लिम शासन –** मुसलमानों ने अपने शासन में गैर मुसलमान, जिनमें जैन भी शामिल थे, के लिए एक निश्चित धार्मिक नीति अपनाई। वे जैनियों से जजिरा नाम का विशेष कर एकत्रि करते थे। अधिकतर मुस्लिम शासकों ने जैनियों के तीर्थ–स्थलों से यात्रा–कर वसूल किया। जैन मंदिरों की मरम्मत करवाना

---

1. तुलसी प्रज्ञा. XXIII. नं. 2 जुलाई–सितम्बर 1997
2. प. जै.प्रा. इ. पृ. 203–05
3. द रेलिज्यिस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पर्स पृ. 9
4. वही पृ. 15

बन्द हो गया और साथ में नये जैन मंदिरों का निर्माण भी। जैन मूर्तियों की आम पूजा बंद करवा दी गई। भारत की बहुत सी सुन्दर मस्जिदें जैन मंदिरों को तोड़कर उनके पत्थरों से बनवाई गई थीं[1] जिन्हें मुसलमानों ने बड़ी निर्दयतापूर्वक नष्ट किया था। मुस्लिम शासन के समय अनेक लोग, जिनमें कुछ जैनी भी थे, बलपूर्वक इस्लाम धर्म को मानने के लिये बाध्य किये गये। इस प्रकार कुछ क्षेत्रों में मुस्लिम शासन के समय जैनियों को बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी।

3. **धार्मिक विघटन–** जैन समुदाय की शक्ति विभिन्न धार्मिक विघटनों के कारण भी कमजोर हुई। 81 ई. तक जैन संघ एक था किन्तु बाद में इसके दो मुख्य विभाजन हो गये, श्वेताम्बर और दिगम्बर। ये सम्प्रदाय बाद में छोटे–छोटे वर्गों जैसे गणों और गच्छों में विभाजित हो गये और समाज में ये वर्ग साधुओं के आपसी मतभेदों से अधिक हुए। इसमें संदेह नहीं कि कुछ विभाजन इस अर्थ में क्रांतिकारी थे कि उन्होंने पूर्ण रूप से मूर्ति पूजा का त्याग करने पर जोर दिया और केवल ग्रंथ पूजा को ही महत्त्व दिया। इन सब सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों का दर्शन एक प्रकार से सामान्य था। फिर क्या कारण है कि इन समुदायों में विभाजन हुआ? वास्तव में साम्प्रदायिक भावना इतनी उभरकर आ गई थी कि विभिन्न सम्प्रदाय एक–दूसरे से घृणा ही नहीं करते थे अपितु जो दूसरे कहते थे उसे ग्रहण भी नहीं करते थे। स्वभावतः जैन हमेशा सम्प्रदाय व उपसम्प्रदाय के बारे में ही सोचते थे, समस्त जैन धर्म पर विचार नहीं करते थे। इन परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि कोई ऐसा शक्तिशाली सामान्य बंधन नहीं था जो सब जैनियों को साथ ला सकें।[2]

4. **सामाजिक विभाजन –** आरंभ में जैनियों के सामाजिक संगठन की व्यवस्था कर्मों की भिन्नता पर आधारित थी। समाज में जन्म व्यक्ति की प्रतिष्ठा निश्चित करने में कसौटी नहीं मानी जाती थी। मथुरा के कुषाण अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि जैन धर्म बिना जाति–पाति के भेदभाव से पालन किया जाता था जो भिन्न–भिन्न धंधों में संलग्न थे। जैनियों में धातुकर्मी, लुहार, स्वर्णकार,

---

1. उदाहरण रूप दिल्ली का प्रसिद्ध कुतुबमिनार, जहाँ शिलालेख लगा हुआ है कि यह मस्झिद 27 जैन मंदिरों को तोड़कर बनाई गई है।
2. ए. संघवे विलास. जैन कम्युनिटी–ए सोशल सर्वे, पृ. 387–88.

बढ़ई, किसान, कुम्हार, सुगंधी, नृत्यकार, व्यापारी आदि थे किन्तु बाद में पूर्व मध्य काल में अनेक जातियों और उपजातियों का जैन समुदाय में उद्भव हुआ। स्वभावतः इन जातियों ने लोगों में अलग अलग भावनाएँ उत्पन्न कर दीं। जातियों में सांस्कृतिक खाई पैदा कर दी जिसने समुदाय में सामाजिक एकता के लिये बाधा खड़ी कर दी।[1] मध्यकाल में ब्राह्मण धर्म के प्रभाव से जैन धर्म की नई जातियों का बनना बंद हो गया। इससे धीरे–धीरे जैनियों की संख्या कम हो गई। इसके परिणामस्वरूप जैन धर्म का पतन हुआ।

5. **श्रावकों और साधुओं में नैतिकता का अभाव–** प्राचीन समय में जैन साधु आ. बप्पभट्टीसूरि, आ. हेमचंद्रसूरि, आ. हरीभद्रसूरि, आ. हेमविजयसूरि ने जैन धर्म के प्रचार में बड़ा उत्साह दिखाया। श्रावक भी जैन धर्म के प्रति बड़े समर्पित थे। किन्तु बाद में साधु और श्रावक दोनों अपने नैतिक कर्त्तव्यों को निभाने में नरम हो गये। इससे जैन धर्म का पतन हुआ।

   जैन आचार्य हरिभद्र सूरि[2] और आ. जिनवल्लभ सूरि[3] ने लोगों का ध्यान जैन साधुओं की कमियों की ओर आकर्षित किया। वे मंदिर में निवास करते थे और अपने व्यक्तिगत हित के लिये सम्पत्ति का उपयोग करते थे। वे चमकीले और खुशबूदार वस्त्र भी पहनते थे। ये श्रावकों द्वारा लाया हुआ खाना या मिठाई खाते थे। वे धन एकत्रित करते थे और स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लेते थे। वे संचित जल और फल–फूल का प्रयोग करते थे। वे मूर्तियों को बेचते थे और बच्चों को अपना शिष्य बनाने के लिए खरीदते थे।[4]

   सोमदेव सूरि यशस्तिलक चम्पू (वि. सं. 1090) में और पंडित आशाधर अंगार धर्मामृत में साधुओं और श्रावकों के नैतिक पतन का उल्लेख करते हैं। भट्टारक सुख का भोग करते थे और श्रावकों से विभिन्न प्रकार से धन प्राप्त करते थे। बनारसीदास[5] ने इन क्रियाओं के विरुद्ध विद्रोह किया और जैन धर्म में अनेक सुधारों को प्रतिपादित किया।

---

1. वही. पृ. 388.
2. संबोध प्रकरण पद 27, 34, 46, 49, 61, 63, 68 इत्यादि।
3. संघ पट्टिक पद 7, 11, 12, 15, 21 इत्यादि।
4. विशेष के लिए देखीए शतपदी ग्रंथ
5. बनारसी विलास।

जैन धर्म के पुनरुत्थान के कारण–

1. **संघ का व्यवस्थित संगठन –** संभवतः जैन धर्म के अस्तित्व का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था कि प्रभु महावीर में संघ को संगठित करने की बड़ी योग्यता थी। संघ चार वर्गों में विभाजित था– 1. साधु, 2. साध्वी, 3. श्रावक, 4. श्राविका। ये वर्ग एक दूसरे से आपसी संबंधों के कारण जुड़े हुए थे। साधुओं और श्रावकों के लिए एक ही प्रकार के व्रत निर्धात किये गये थे। अन्तर केवल यह था कि साधुओं को उनका अनुसरण कड़ाई से करना पडता था जबकि श्रावक उनका पालन ढिलाई से करते थे। साधु श्रावकों के धार्मिक जीवन को नियंत्रित करते थे और श्रावक लोग साधुओं के चरित्र पर कड़ा नियंत्रण रखते थे । साधु लोग सांसारिक मामलों से अपने आप को पूर्णतया अलग रखते थे और साधु जीवन का उच्च स्तर बनाये रखते थे। अगर वे निर्धारित स्तर का पालन नहीं करते थे तो उनको अपने स्थान से हटा दिया जाता था। साधुओं और श्रावकों में एकता धार्मिक कर्त्तव्यों में बनी रही। इसने जैन धर्म को सैद्धांतिक परिवर्तन से बचाए रखा और करीब 2500 वर्षों तक जैन धर्म को कोई नुकसान नहीं हुआ।

2. **रूढ़िवाद –** जैन धर्म के अस्तित्व का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण इसमें परिवर्तन नहीं होने का रूढ़िवाद था। सैकड़ों वर्षों से जैन धर्म मूल संस्थाओं और सिद्धान्तों पर अडिग रहा। जैन धर्म के मूल सिद्धांतों में वास्तव में कोई परिवर्तन नहीं हो सका। यद्यपि साधुओं और श्रावकों के जीवन और क्रियाओं में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए जैसे कुछ का प्रयोग कम हो गया और कुछ लुप्त हो गई। **इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं कि जैन समुदाय का धार्मिक जीवन आज भी वास्तविक में वही है जो 2500 वर्ष पूर्व था।** यह कड़ा धार्मिक निर्धारण जैन स्थापत्य और जैन मूर्तियों में देखा जाता है। जैन मूर्तियों की शैली हजारों वर्षों बाद भी एक ही प्रकार की देखी जाती है और उसमें कोई अंतर नहीं है।

3. **जैन धर्म को राजकीय आश्रय –** प्राचीन और मध्य युग में देश के विभिन्न भागों में जैन धर्म को जो राजकीय आश्रय प्राप्त हुआ उसके कारण निःसन्देह जैन धर्म का अस्तित्व बना रहा। प्राचीन समय में कर्नाटक, गुजरात और राजस्थान जैन धर्म के गढ़ बने रहे क्योंकि यहाँ के अनेक राजा, मंत्री और

सेनापति जैन थे जो अपनी अपनी योग्यता के लिए प्रसिद्ध थे। जैन राजाओं के अतिरिक्त अनेक जैनेतर राजाओं ने भी जैन धर्म के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया। राजस्थान के कुछ अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि जैन धर्म के सिद्धांतों के पालन के लिये पूरे वर्ष में पशुओं के वध को रोकने के लिये कुछ नगरों में आदेश दिये गये और हरेक वर्ष की वर्षा ऋतु के चार महीनों में तेल की घाणी और कुम्हारों के चक्के का कार्य करना बन्द करवा दिया गया था। दक्षिण से अनेक अभिलेख मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि जैनेतर राजा भी जैनियों को अपने धर्म का पालन करने के लिये सहूलियतें देते थे। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण विजयनगर सम्राट् बुक्कराय प्रथम का 1368 ई. का अभिलेख है। जब वहाँ सब जिलों के जैनियों ने वैष्णवों के अत्याचारों से रक्षा करने के लिए प्रार्थना की तो वहाँ के नरेश ने दोनों सम्प्रदायों के नेताओं को बुलाया और सूचित किया कि उनमें आपस में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए और उनको धार्मिक क्रियाओं का पालन समान स्वतंत्रता के साथ करना चाहिए।

4. **जैन साधुओं के उच्चादर्श–** अनेक प्रसिद्ध जैन साधुओं ने अपने विभिन्न कार्य कलापों से जैन धर्म के अस्तित्व में योगदान दिया। वे जैन धर्म का समस्त भारत में प्रचार करने के लिये उत्तरदायी थे। विद्वान जैन साधुओं ने जैन धर्म के नैतिक सिद्धातों का प्रचार देश की विभिन्न भाषाओं में पवित्र साहित्य लिखकर किया। जैन साधुओं की साहित्यिक और प्रचार करने की क्रियाओं से अंत में दक्षिण भारत में ब्राह्मण धर्म की पुनरावृत्ति का सामना करने के लिये और लम्बे समय तक स्थिति को मजबूत करने में सहायता मिली। दक्षिण के महत्त्वपूर्ण जैन साधु और लेखक कुंदकुंद, उमास्वाति, समंतभद्र, पूज्यवाद, अकलंक, विद्यानंदिन, माणिक्यनंदिन, प्रभाचन्द्र, जिनसेन प्रथम, गुणभद्र, सोमदेव, पम्प और रन थे। इन महानपुरुषों में आचार्य समन्तभद्र और आचार्य अकलंक जैन धर्म के प्रचार में बहुत उत्साही थे। दूसरी सदी ई. में समन्तभद्र ने समस्त भारत वर्ष का भ्रमण किया और विरोधियों को कांची में वाद-विवाद में हराया। राजनैतिक विषयों में भी जैन साधु बहुत रुचि लेते थे और जब आवश्यकता होती थी तब लोगों का पथ-प्रदर्शन भी करते थे। गंग और होयसलों ने जैनाचार्यों से नये राज्य स्थापित करने में प्रेरणा प्राप्त की। जैन आचार्यों ने अपनी व्यक्तिगत स्पर्द्धाओं में भी प्रतिभा स्थापित की। आचार्य

पूज्यपाद ने जिन 37 कला और विज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त की उनके नाम पूज्यपाद चरित ग्रंथ में दिये हुए हैं। सातवीं सदी के प्रसिद्ध यात्री युवानचांग ने सुन रखा था कि प्राचीन समय के निर्ग्रन्थ (जैन साधु) दिव्य–भक्ति में प्रवीण थे। स्वभावतः राजा और प्रजा में जैन साधुओं के प्रति बड़ा सम्मान देश के विभिन्न भागों में था। देहली के मुस्लिम सम्राट भी उत्तर और दक्षिण भारत के जैन संतों का आदर करते थे। राजस्थान के राजा लोग जैन आचार्यों को आमंत्रित किया करते थे और अपनी राजधानियों में उनका राजकीय स्वागत करते थे। इसमें आश्चर्य नहीं कि ऐसे प्रभावशाली जैन साधुओं के चारित्र और क्रियाकलापों ने जैन धर्म के अस्तित्व के लिये अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया।

5. **जनता में सुनाम–** जैन धर्म अपने अस्तित्व के लिये अन्य धर्मों के अनुयोयियों के सुनाम पर भी निर्भर रहा। जैन विभिन्न प्रकार से, जैसे जनता को शिक्षित कर और अनेक धार्मिक संस्थाओं को स्थापित कर लोगों के दुःख और तकलीफों को दूर करते थे। आरंभ में जैनियों ने अपने कुछ मुख्य सिद्धांत बना लिये, जैसे चार प्रकार के दान देना, बिना किसी जाति–पांति के भेदभाव के – आहार, अभय ओषधि और विद्या दान। कुछ विद्वानों के अनुसार यह दान–पद्धति जैन धर्म के प्रचार का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था। इसके लिये जहाँ कहीं वे अधिक संख्या में थे वहाँ उन्होंने आहार गृह, धर्मशालाएँ, अस्पताल और विद्यालय स्थापित किये। लोगों को शिक्षित करने का श्रेय जैनियों को जाता है क्योंकि जनता को शिक्षित करने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। अनेक अवशेषों से ज्ञात होता है कि जैन साधुओं का दक्षिण देशों में, जैसे आंध्र, तमिल, कर्नाटक और महाराष्ट्र में बच्चों को शिक्षित करने में बहुत बड़ा हाथ रहा है। दक्षिण में बच्चों के लिये अक्षर ज्ञान शुरु करने के पश्चात् जैन सूत्र 'ओम नमः सिद्धम्' से ज्ञात होता है कि मध्यकाल के जैन आचार्यों ने जनता की शिक्षा पर इतना पूर्ण नियंत्रण कर लिया था कि हिन्दुओं ने भी जैन धर्म के पतन के पश्चात् जैन सूत्र को ही चालू रखा।

6. **ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों के साथ गूढ़ संबंध –** अन्य महत्त्वपूर्ण कारण जिससे जैन धर्म का अस्तित्व रहा वह है जैनों का ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों के साथ गूढ़ और सहिष्णुता के सम्बंध रखना। इसके परिणामस्वरूप जैन

धर्म, ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म इतनी सदियों तक साथ-साथ फले-फूले। यह स्वाभाविक है कि इन्होंने एक-दूसरे को प्रभावित भी किया। इन सिद्धांतों ने जैसे पुनर्जन्म और निर्वाण के सिद्धांत, स्वर्ग, पृथ्वी और नरक का सिद्धांत और यह सिद्धान्त कि निर्धारित नियम के अनुसार धर्म के पैगम्बरों का जन्म होता है- इन तीनों धर्मों को समानताएं प्रदान की। भारतवर्ष के बौद्ध धर्म के लुप्त होने के पश्चात् जैन और ब्राह्मण धर्म के अनुयायी एक-दूसरे के और अधिक समीप आये। इसी कारण सामाजिक और धार्मिक जीवन में जैन ब्राह्मण धर्म अनुयायियों से अधिक भिन्न नहीं दिखते। अनेक विषय जैसे अंधविश्वास और क्रियाएँ, धार्मिक उत्सव और व्रत, उद्योग-धंधे, वस्त्र और आभूषण, संस्कार और भाषा और जीवन के संबंध में सामान्य दृष्टिकोण दोनों धर्मों के अनुयायियों में समान रूप से मौजूद है। ऐसी निश्चित जातियाँ भी हैं जिनके सदस्य दोनों धर्मों को मानते हैं, और जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों में कुछ सीमा तक विवाह संबंध भी देखे जाते हैं।

7. **स्थानीय क्रियाओं का पालन –** यह भी देखा जाता है कि जैनियों के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों में जैनेतर तत्त्वों का भी अंतःसंचरण हो गया। इसका अर्थ यह नहीं है कि जैनियों ने आँख मूंदकर जैनेतर तत्त्वों को ग्रहण कर लिया। संभव है कि जैनियों ने जैनेतर तत्त्वों के अंतःसंचरण की स्वीकृति दी क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करना था। इसका कारण है कि जैनियों ने यह जानकर अपने कुछ लोगों को स्पष्टतः जैनेतर रीति-रिवाज अपनाने के लिये अनुमति दी।

जैन धर्म के जो नये अनुयायी थे उनके लिये यह आवश्यक नहीं था कि वे पहले की क्रियाओं का पूर्ण रूप से बहिष्कार करें और तुरंत जैन रीति-रिवाजों का अनुसरण करें। जैनियों की संख्या बढ़ाने के लिये कुछ छूट भी दी गई। यद्यपि धर्म विरोधी प्रवृत्तियाँ चालू रहीं, किन्तु जैनियों की संख्या बढ़ती गई। कुछ ब्राह्मण धर्म की क्रियाओं का भी अनुसरण किया गया, यद्यपि वे जैन धर्म के विरुद्ध थीं। जैन आचार्यों के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि यदि नया जैन धर्म का अनुयायी एकाएक अंधविश्वासों को नहीं त्याग सके तो भी उसका मिश्रित स्वागत करना चाहिए किन्तु उसका एकदम बहिष्कार किया जाना ठीक नहीं है।

आपातकाल के समय धर्म और जीवन को सुरक्षित करने के लिए कभी-कभी

धार्मिक क्रियाओं में परिवर्तन किया गया और जैनियों को उसी मार्ग की ओर चलना पड़ा। प्राचीन समय में ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों ने जैन साधुओं और गृहस्थों के प्रति अनेक अत्याचार किये। ऐसी परिस्थितियों में जैनियों ने ब्राह्मणों की लालची प्रवृत्तियों में शरण ली और सामाजिक क्रियाओं को करने के लिये ब्राह्मणों को रखना शुरू किया। कुछ जैनियों के द्वारा ब्राह्मणों को विवाह और अन्य प्रकार के संस्कार करने के लिये देश के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न अवस्थाओं में रखा गया। कुछ जैन-मंदिरों में पूजा करने के लिये नियुक्त किये गये। ब्राह्मणों की घृणा को शान्त और निर्मल करने के लिये जैन ग्रंथों में कुछ ब्राह्मणीय कर्मकाण्डों को जोड़ा गया। संभवतः जैन धर्म और जैन समुदाय के अस्तित्व के लिये ऐसी परिस्थिति में यही एक मार्ग था। कुछ ब्राह्मण देवी-देवताओं को जैन-मंदिरों में इसी उद्देश्य के लिए छोटा स्थान दिया गया। उनका क्षेत्रपाल नाम रखा गया जैसे उस स्थान के रक्षक।

जैन धर्म के लिये यह असंभव था कि स्थानीय रीति-रिवाज विश्वास और पूजा का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। थोड़े से जैनियों को जैनेतरों के बीच में रहना था, इस कारण उनके लिये आवश्यक था कि वे ब्राह्मण धर्म के रीति-रिवाजों को स्वीकार करें। इसी कारण से जैनियों ने जनेऊ पहनना और ब्राह्मण पर्वों में भाग लेना, मृत लोगों की स्मृति रखना और मृत्यु के दसवें दिन कौवों को चावल का पिण्ड देना, आदि शुरू कर दिये। ईश्वर से वरदान मांगना, भूत-पलीतों में विश्वास करना, अजैन देवी-देवताओं को पूजना आदि भी स्वीकार किया। इसी प्रकार जैनियों ने जानकर अपने अस्तित्व के लिये जैन रीतिरिवाजों में जैनेतर तत्त्वों का अन्तःसंचरण स्वीकार किया। किन्तु ऐसा करने में जहाँ तक हो सका धार्मिक क्रियाओं में पवित्रता बनाये रखने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया। जैन धर्म के अस्तित्व के लिये जैनाचार्यों ने इसका विरोध नहीं किया अपितु उन्होंने जैनियों द्वारा स्थानीय रीति-रिवाजों का पालन करे के लिये मौन स्वीकृति दी।

यशस्तिलकचम्पू में सोमदेव का मानना है कि जैन श्रावकों का धर्म दो प्रकार का है- लौकिक और पारलौकिक। पहले वाला लोकप्रिय रीति-रिवाजों पर और बाद का ग्रंथों पर आधारित है। जैनियों ने स्वीकृत लोकप्रिय रीति-रिवाजों का पालन किया, यदि वे जैन धर्म के मूल सिद्धांतों के विरोध में नहीं आते तो। इस प्रकार स्थानीय रिवाजों का पालन कर जैनियों ने विपरीत परिस्थितियों के साथ भी

सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार बुद्धिमानी के सामंजस्य ने अंत में ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों के हाथों जैनी पूर्ण लुप्त होने से बच गये और सैकड़ों वर्षों तक अपने अस्तित्व को बनाये रख सके। जैनियों ने न केवल ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों वरन् अन्यों के साथ भी अच्छे संबंध रखे। जब जैन बहुत लम्बे समय तक सत्ता में थे वे मुश्किल से जैनेतर लोगों पर अत्याचार में शामिल हुए। इस प्रकार से जैन धर्म के पतन के पश्चात् भी जैनियों का अस्तित्व बना रहा।[1]

1. ए. संघवे विलास. जैन कम्युनिटी-ए सोशल सर्वे, पृ. 377-385.1. अध्याय XXIX पृ. 134

8000 जैन साधु भगवंतों की हत्या का विवरण

गंग, कदम्ब, राष्ट्रकूट और होय्सल (पोय्सल)- इन चार राजवंशों के परिचय में बताया जा चुका है कि शताब्दियों तक जैनधर्म को प्रमुख आश्रय देने वाले इन राजवंशों के राजाओं, रानियों, प्रधानामात्यों, दण्डनायकों, सामन्तों, अमात्यों और प्रायः सभी वर्गों के प्रजाजनों द्वारा जैन धर्म के प्रचार-प्रसार एवं उत्कर्ष की दिशा में किये गये विविध आयामी कार्यों के परिणामस्वरूप जैनधर्म की गणना दक्षिण के प्रमुख धर्मों में की जाने लगी और उसका प्रायः सभी दक्षिणी प्रदेशों में, राज्यों में ईसा की दूसरी शताब्दी से ईसा की सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक पूर्व वर्चस्व रहा।[1]

एतद्विषयक पूर्व में किये गये जैन संहार चरितम् और पेरियपुराण के उल्लेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि तमिल प्रदेश में ज्ञानसंबंधर, अप्पर आदि शैव सन्तों द्वारा शैवधर्म के प्रचार-प्रसार एवं अभ्युदय के लिये प्रारंभ की गई धर्मक्रान्ति के समय भी जैनधर्म दक्षिणापथ का बहुजनसम्मत और सर्वाधिक वर्चस्वशाली धर्म था। अपने इस वर्चस्वकाल में जैन आचार्यों, श्रमणों और विद्वानों ने तमिल, तेलुगू, कन्नड़ आदि दक्षिण की भाषाओं में अनेक अनमोल एवं अप्रतिम ग्रंथरत्नों की रचनाएं कर वहाँ के निवासियों में ज्ञान के चहुँमुखी प्रसार के साथ साथ दक्षिणापथ के साहित्य को सदा सर्वदा के लिये समृद्ध बना दिया। सरस्वती की इस उतकट उपासना के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण दक्षिणापथ में जैन मुनियों को ज्ञान का प्रतीक मानकर सर्वत्र उनकी यशोगाथाएं गाई जाने लगीं। उन गाई जाने वाली यशोगितिकाओं के पदों में से एक पद इस प्रकार हैः-

सवणं बलपंगोले गांडिवि बिल्गोले बलविरोधि वज्राङ्गोले दा-
नवरिपु चक्रंगोले कौरवारि गदेगोले पोणर्केगावं निल्वं।।

अर्थात्-विद्या के क्षेत्र में-ज्ञान के क्षेत्र में जैन मुनि के समक्ष कौन खड़ा रह सकता है? जिस प्रकार अर्जुन के गाण्डीव धनुष उठाने पर, इन्द्र के वज्र उठा लेने पर, विष्णु के चक्र उठाने और भीम के गदा उठा लेने पर उनके समक्ष

---

1. In fact a close study of Indian religious movements particularly those in the Peninsula, would reveal that for nearly four centuries, second to the beginning of the seventh century Jainism was the predominant faith.

(स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनिज्म, रामास्वामी एम. एस. अय्यंगर लिखित)

कोई खड़ा नहीं रह सकता, उसी प्रकार जैन मुनि द्वारा लेखनी उठा लिये जाने पर उसके समक्ष संसार का कोई व्यक्ति नहीं ठहर सकता।

इस प्रकार अधिकाधिक लोकप्रिय होता हुआ जैन धर्म जिस समय चहुँमुखी उत्कर्ष के पथ पर अग्रसर हो रहा था, उस समय ईसा की सातवीं शताब्दी में[1] शैव सन्तों ने तमिलनाडु के पाण्ड्य राज्य की राजधानी मदुरा और पल्लव राज्य की राजधानी कांची में शैव धर्म के प्रचार–प्रसार का अभियान चलाया।

उस समय जैनधर्म का दक्षिण में वर्चस्व होने के साथ–साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जन–जीवन के स्तर को ऊपर उठाने वाले जनकल्याणकारी कार्यों में जैन धर्मावलम्बियों के सर्वाधिक सक्रिय योगदान के फलस्वरूप जैन धर्म बहुजन सम्मत एवं सर्वाधिक लोकप्रिय बना हुआ था। शैव संतों ने अनुभव किया कि जब तक जैन धर्म के वर्चस्व को, उसकी लोकप्रियता को समाप्त नहीं कर दिया जाता, उन्हें अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफलता नहीं मिल सकती। जैन धर्म को अपने अभीप्सित लक्ष्य की पूर्ति में बाधक समझकर उन्होंने सर्वप्रथम जैन धर्म पर प्रहार करने का निश्चय किया। किन्तु मदुरा और कांची ने जैन संघ सुगठित एवं सशक्त थे और उन्हें राज्याश्रय भी प्राप्त था। ऐसी दशा में जैन धर्म को जड़ से समाप्त करने की बात तो दूर रही, उसे किसी प्रकार की हानि पहुंचाना भी उस समय बड़ा दुस्साध्य कार्य था। शैव सन्तों ने इसे सुसाध्य बनाने के लिये सर्वप्रथम येन–केन–प्रकरेण राजसत्ता को अपने पक्ष में करने की सोची।

मदुरापति सुन्दर पाण्ड्य जैन धर्मावलम्बी था। किन्तु उसकी रानी (चोल राजपुत्री) और पाण्ड्यराज का प्रधानमंत्री–दोनों ही शैव थे। प्रसिद्ध शैव सन्त ज्ञान सम्बन्धर ने सुन्दर पाण्ड्य की रानी और प्रधानमंत्री के साथ सम्पर्क स्थापित किया। मंत्रणा करते समय सुन्दर पाण्ड्य की रानी ने उपाय सुझाते हुए कहा– 'गुरुवर! पाण्ड्यराज की कमर में घूब, (कूबड़) की ग्रंथि उभर आने के

---

1. क) डा. के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री ने कांची के राजा महेन्द्रवर्मन का शासनकाल ई. सन् 600–630 माना है। इससे इसके समकालीन कुब्ज पाण्ड्य, अप्पर, ज्ञानसम्बन्धर और शैवों के हाथों जैनधर्म पर आये संकट का भी ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आस–पास का समय निश्चित किया जा सकता है। दक्षिण भारत का इतिहास, पृ. 126

ख) के. वी. सुब्रह्मण्यम् एवं रामास्वामी अयंगर भी इसे ईसा की सातवीं शताब्दी की घटना मानते हैं। (मीडिएवल जैनिज्म, बी. ए. सेलेटोर, पृ. 275)

परिणामस्वरूप वे कूबड़े हो गये हैं। उनकी कमर पूरी तरह झुक गई है। इस कारण वे सदा चिन्तित और दुःखी रहते हैं। यदि आप किसी औषधोपचार से अथवा मंत्र–तंत्र के चमत्कार से उनकी कमर सीधी कर सके तो अपना कार्य अनायस ही सिद्ध हो सकता है।

कुछ क्षण विचार के पश्चात् ज्ञानसम्बन्धर ने कहा–'मुझे विश्वास है कि भगवान शंकर के कृपाप्रसाद से यह काम तो मैं कर दूंगा।'

रानी ने हर्षावरुद्ध कण्ठस्वर से कहा–'गुरुवर ! तो समझ लीजिये कि अपना काम सिद्ध हो गया।'

कुछ क्षण विचारमग्न रहने के अनन्तर पाण्ड्य राजरानी ने कहा– 'मेरे मस्तिष्क में एक बड़ी सुन्दर योजना आई है। मैं आज ही महाराजा से निवेदन करूंगी कि जैन साधु बड़े ही पहुंचे हुए और अनेक प्रकार की सिद्धियों से सम्मपन्न होते हैं। आपके राज्य में उनके रहते हुए आपका यह रोग दूर नहीं हो सके, आपकी कमर उत्तरोत्तर अधिकाधिक झुकती ही जाय, यह न हमारे लिये शोभास्पद है और न उनके लिये ही। अतः कल प्रातःकाल ही उन्हें यहाँ राजसभा में बुलवा कर कहा जाय कि वे अपनी तप की, अद्भुत सिद्धियों की अथवा मन्त्र–तन्त्र आदि चमत्कारों की शक्ति लगाकर आपकी कमर को सीधी कर दें।'

अपना कथन प्रारंभ रखते हुए रानी ने अपने गुरु ज्ञानसम्बन्धर से कहा– 'मेरा विश्वास है कि महाराज रोग से मुक्ति पाने के लिये उन जैन साधुओं को अवश्यमेव बुलायेंगे और रोग से मुक्ति दिलाने की उनसे प्रार्थना भी करेंगे। पर वे ऐसा कोई चमत्कार करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। इससे पहले कि जैन साधु कुछ कहें, मैं राजा, राजसभा और उन जैनसाधुओं के समक्ष स्पष्ट शब्दों में यह बात रख दूँगी कि जो धर्मगुरु राज–राजेश्वर पाण्ड्यराज को इस रोग से मुक्ति दिलायेगा वही पाण्ड्यराज और उसकी प्रजा का धर्मगुरु और उनका धर्म ही सबका धर्म होगा। पाण्ड्यराज अपने इस असाध्य रोग से छुटकारा पाने के लिये बड़े ही आतुर हैं अतः वे तत्काल इस पण (शर्त) को सहर्ष स्वीकार कर लेंगे और इस तरह पाण्ड्यराज को शैव–धर्मावलम्बी बना लिये जाने के पश्चात् सम्पूर्ण पाण्ड्य राज्य में आपको यथेप्सित रूप से शैव धर्म का प्रचार–प्रसार करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं आयेगी। हमारे समक्ष करणीय कार्य यही है कि पाण्डयराज किसी प्रकार आपके हाथ से ही रोगमुक्त हो।'

महारानी द्वारा सुझाये गये उपाय से अपने कार्य की सिद्धि का अमोघ उपाय मानते हुए शैव सन्त ज्ञानसन्बन्धर ने कहा– 'आप विश्वास रखिये कि यौगिकी क्रिया के माध्यम से मैं पाण्ड्यराज को इस असाध्य माने जा रहे रोग से जीवन भर के लिये मुक्त कर दूँगा।'

रानी ने बड़ी ही चतुराई के साथ अपनी योजना के क्रियान्वयन हेतु अपने पति से निवेदन किया–'स्वामिन् ! भांति–भांति के उपचारादि करवाये जाने के उपरान्त भी आपका यह रोग शान्त नहीं हुआ, बल्कि और भी उग्र रूप धारण करता जा रहा है। यह हमारे लिये बड़ी चिन्ता का विषय बना हुआ है। अब हमें इसके लिये धर्म की शरण ग्रहण करनी चाहिये। यही एक मार्ग बचा है। कल प्रातःकाल ही धर्मगुरुओं को बुलाकर उनसे प्रार्थना की जाय कि वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा, अपने त्याग–तप के बल पर अथवा किसी भी प्रकार की अलौकिक सिद्धि के प्रताप से अथवा चमत्कारादि से किसी भी प्रकार हो, आपको रोगमुक्त कर पूर्ण स्वस्थ बना दें।'

'पाण्ड्य राजराजेश्वरी! तुम्हारा यह प्रस्ताव परमोपयोगी होने के साथ–साथ वस्तुतः बड़ा प्रशंसनीय है। इस प्रकार की व्यवस्था तो हमें इस रोग के प्रादुर्भाव काल में ही कर लेनी चाहिये थी। अस्तु, कल अवश्य ऐसा ही करेंगे।'

यह कहते हुए सुन्दर पाण्ड्य ने प्रातःकाल साधुओं को ससम्मान राजसभा में निमंत्रित करने का निर्देश सम्बन्धित अधिकारी को दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजसभा में जैन साधु उपस्थित हुए। महामन्त्री ने उनसे प्रार्थना की कि वे कृपा कर अपने विशिष्ट विज्ञान अथवा विद्याबल से पाण्ड्य राज के रोग का समूल नाश कर दें।

महाराजनी ने भी जैन मुनियों से निवेदन किया–'भगवन् ! आप राजगुरु हैं। यह सिद्धियाँ आपकी चरण दासियाँ बनी हुई आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये प्रति पल तत्पर रहती हैं। कृपा कर आप अपने सिद्धिबल के चमत्कार से मेरे स्वामी को पूर्ण रूपेण स्वस्थ कर दें। राजराजेश्वर के रोगग्रस्त होने के कारण स्वयं महाराज, समस्त प्रजाजन और हम सब चिंतित हैं। महाराज को रोगमुक्त करने के प्रयास में किसी भी प्रकार की कमी न रह जाय, इसलिये हम सब और स्वयं पाण्ड्यराज की ओर से यह पण (शर्त) रखा गया है कि जो धर्मगुरु पाण्ड्यराज को इस रोग से मुक्त कर देगा वही राजगुरु होगा। राजगुरु होने के कारण सर्वप्रथम

आपको यह अवसर दिया जा रहा है। आपके असफल रहने पर अन्य को अवसर दिया जाएगा।'

पेरियपुराण के उल्लेखानुसार सर्व प्रथम जैन मुनियों ने पाण्ड्यराज को रोगमुक्त करने के लिये मन्त्र-तन्त्र आदि सभी प्रकार के उपचारों का प्रयोग किया किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई।

अन्ततोगत्वा शैव सन्त ज्ञानसम्बन्धर को आमन्त्रित किया गया और पण को सुनाने के पश्चात् उनसे भी यही प्रार्थना की गई कि वे अपनी अलौकिक शक्ति से पाण्ड्यराज को उस असाध्य रोग से मुक्ति दिलाएं।

ज्ञानसम्बन्धर ने आसुतोष शंकर के ध्यान के साथ राजा को रोगमुक्त करने के प्रयास प्रारंभ किये और सब के देखते-देखते ही झुकी हुई कमर वाले पाण्ड्य नरेश को पूरी तरह सीधा खड़ा कर पूर्णतः रोगमुक्त करते हुए उन्हें कुब्ज पाण्ड्य से सुन्दर पाण्ड्य बना दिया।

सुन्दर पाण्ड्य ने पण (शर्त) के अनुसार रोग से मुक्ति दिलाने वाले ज्ञानसम्बन्धर को अपना धर्मगुरु बनाते हुए स्वयं ने भी विधिवत् शैवधर्म अंगीकार कर लिया।

सुदर पाण्ड्य को जैन धर्मावलम्बी से शैवधर्मावलम्बी बना लेने के पश्चात् राजा और प्रजावर्ग के मन पर ज्ञानसम्बन्धर का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। ज्ञानसम्बन्धर ने पाण्ड्यराज की महारानी (चोलराजपुत्री) और पाण्ड्यराज के महामंत्री के साथ मन्त्रणा कर जैन मुनियों को अपने धर्म की महानता सिद्ध करने की चुनौतियों पर चुनौतियाँ दीं और अपनी पक्षधर राजसत्ता के बल पर बलपूर्वक जैनों के साथ चमत्कारिक द्वन्द किये। **उन धार्मिक द्वान्द्वों में जैनों को पराजित कर पेरिय पुराण एवं जैन संहार चरितम् आदि शैव साहित्य के उल्लेखानुसार मदुरा में 8000 जैन श्रमणों को सुन्दर पाण्ड्य की आज्ञा से घानी में पिलवा दिया गया। इस तरह ज्ञानसम्बन्धर के निवेदन में शैवों ने जैन मठों और जैन मंदिरों को नष्ट करना और जैनधर्मावलम्बियों को बलात् धर्मपरिवर्तन कर शैव बनाना प्रारम्भ किया।**

उधर अप्पर नामक शैव सन्त ने पल्लवराज महेन्द्रवर्मन को जैन से शैवधर्मावलम्बी बना कर उसके सहयोग से कांची में ज्ञानसम्बन्धर के समान ही सामूहिक संहार, बलात् सामूहिक धर्मपरिवर्तन, मठ-मंदिर-वसदि प्रभृति जैन

धर्मस्थानों के विध्वंसन आदि के रूप में जैनधर्मावलम्बियों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करने प्रारंभ किये।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि बहुत से जैन प्राण बचाने के लिये मदुरा और कांची नगर से भाग कर अन्यत्र चले गये। पीछे रहे जैनों में से अधिकांश को बलात् शैवधर्मावलम्बी बना दिया गया और जिन लोगों की धर्म पर अटूट आस्था थी और जो धर्म को प्राणों से भी प्रिय मानते थे उन जैनों को इन दोनों शैव संतों के अनुयायियों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया।

जैन धर्म पर यह एक ऐसा प्रहार था, जिसे धार्मिक विप्लव कहा जा सकता है। इस धार्मिक विप्लव से जैन धर्म की, तामिलनाडू में सदियों से गहराई से जमे हुए जैन संघ की अपूरणीय क्षति हुई जिसकी पूर्ति लगभग 13 शताब्दियों की सुदीर्घ कालावधि के व्यतीत हो जाने पर भी अद्यावधि नहीं हो पायी है।

पेरियपुराण, स्थलपुराण आदि शैव साहित्य में तमिलनाडू से जैन धर्म को समूल उखाड़ फेंकने के लिये शैवों द्वारा किये गये इस धार्मिक अभियान की **सफलता का श्रेय तिरु ज्ञानसम्बन्धर, तिरु अप्पर, सुन्दर पाण्ड्य की रानी और उसके प्रधानमंत्री को दिया गया है।**

शैव सन्तों ने, मुख्यतः ज्ञानसम्बन्धर ने अपने इस धार्मिक अभियान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सहायता देने वाली सुन्दर पाण्ड्य की रानी को और सुन्दर पाण्ड्य के प्रधानमंत्री को 63 महान् शैव सन्तों की पंक्ति में प्रमुख स्थान दिया।1

तिरु ज्ञानसम्बन्धर के चमत्कारों से प्रभावित सुन्दर पाण्ड्य और तिरु अप्पर से प्रभावित हुए पल्लवराज महेन्द्रवर्मन की सहायता से लगभग एक ही समय में शैवों द्वारा जैन श्रमणों एवं जैन धर्मानुयायियों का मदुरा और कांची में जो सामूहिक संहार एवं बलात् सामूहिक धर्म परिवर्तन किया गया तथा जैनों के मन्दिर, मठों, वसतियों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रों को नष्ट–भ्रष्ट किया गया और जैनधर्मावलम्बियों पर और भी अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये, इस सब घटनाचक्र को केवल किंवदन्तियाँ अथवा शैव पुराणकारों की कोरी कल्पना की उड़ान अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण मानने से इन्कार करते हुए **डा. विन्सेन्ट स्मिथ ने इन विवरणों को ऐतिहासिक तथ्य प्रकट करने वाले विवरण माना है।**

इन घटनाओं को ऐतिहासिक घटनाएं मानने के अपने अभिमत की पुष्टि में डॉ. विन्सेन्ट स्मिथ ने मदुरा के विशाल मीनाक्षी मन्दिर की दीवारों पर चित्र के रूप में

प्रस्तुत किये गये इन घटनाओं के विवरणों को प्रबल प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। मदुरा के मीनाक्षी मन्दिर की दीवारों पर और दक्षिण के बड़े –बड़े मंदिरों की दीवारों पर उन अत्याचारों की स्मृति दिलाने वाले चित्रों को डॉ. विन्सेन्ट स्मिथ ने इस तथ्य को सबल साक्षी माना है कि शैव साहित्य में उपलब्ध मदुरा और कांची में शैवों द्वारा किये गये जैनों के संहार के विवरण वस्तुतः ऐतिहासिक विवरण हैं।

डा. विन्सेन्ट स्मिथ के इस अभिमत को उद्धत करते हुए एस. कृष्णास्वामी अय्यंगर ने अपनी इतिहास ग्रंथ सम केन्ट्रीब्यूशन्स आफ साउथ इंडिया टू इंडियन कल्चर के चैप्टर 15 में लिखा है–

"The story has it that the whole body of Jains were impaled by order of the monarch at the instigation of the saint. The late Dr. Vincent Smith has so far gone in accepting this story as embodying a historical incident that he regards it as one of the genuine though exceptional instances of persecution for religion. He relies principally upon the evidence of a painting of this incident on the walls of the great temple at Madura. It is not only on the walls of the temple at Madura, but in all the bigger Siva Temples of the South the representation of this story is found. The historicity of this incident will have to depend upon the particular date at which the painting or even a stone representation of theis incident, was set where it is. When once the hagiologists set the fashion by giving currency to these stories, it is not difficult to understand that they passed into popular currency, and in the representation of various 'Lilas' of Shiva or vishnu (performance of miracles in sport) or any other God, these would naturally figure. This position is must clearly illustrated in the renovation of temples carried out by the class of Nathukottai Chettis at the present time. Whether pictures of these already existed or not, such representations, as constituted one of the 'Lilas' of Shiva are made by them without sacredotal impropriety. It does not require much interval of time even, as we have already stated, that a lithic representation of the performance of EKANTADA Ramayya is found built in a temple constructed at a period following close upon the age of this Ramayya."

लब्धप्रतिष्ठ इतिहासकार स्व. पी. बी. देसाई ने शैव संतों तिरु ज्ञानसम्बन्धर और अप्पर के नेतृत्व में तामिलनाडू के जैनों के विरुद्ध चलाये गये घातक

1. Both the queen and the minister are counted among the sixty three canonical devotees.

(सम कन्ट्रीब्यूशन्स आफ साउथ इंडिया टू इंडियन कल्चर, कृष्ण स्वामी अय्यंगर एम. ए. पी. –एच. डी. लिखित चैप्टर 13)

अभियान में सुन्दर पाण्ड्य और महेन्द्रवर्मन पल्लवराज की सहायता से जैनों पर जो अत्याचार किये, उस घटनाओं को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करते हुए भी पेरिय-पुराण, स्थल-पुराण तथा शैवों के अन्य साहित्य में जिस रूप में इस घटनाओं का विवरण दिया गया है उसे अतिरंजित और अतिशयोक्तिपूर्ण माना है। जैनों पर शैवों द्वारा किये गये अत्याचारों के संबंध में श्री पी. बी. देसाई ने लिखा है:-

"As it was the doom of the faith in other parts of India, Jainism had to encounter formidable opposition in its carrier in the Tamil Country also. This was in the period of the seventh and eightth centuries A.D. to start with; and its opponents were the champions of the Shaivite and Vaishnavite faiths of the Brahmanical religion. Almost simultaneously, under the leadership of Appar and Sambandhar, the advocates of the Shaivite School launched rethless attacks. against the adherents of the Jain Law and earned signal success in the Pallawa and Pandya Kingdoms. The Pallawa King Mahendravarman I and the Pandya ruler Marwarman or Sunder Pandya became converts to the Brahmanical faith.

This must have dealt a severe blow to the cause of the Jain religion. Jain Law was challenged; Jaina philosophy was questioned, Jain religions practices were diverted everywhere. Polemics were raised, disputations were held between the supporters of rival creeds regarding their superiority, proofs were demanded; and some times even ordeals and miracles were resorted to. The elated victors backed by the authority of the State indulged in violent activities. The vanquished were pursued and persecuted.

The accounts of the persecution of the Jains given in the Periyapuranam and other literary works of the Brahmanical School present a highly coloured and exaggerated picture of the times. Still it must be a fact that the Jains met with iniquities and maltreatment at the hands of their intolerant opponents. The scencs of these persecutions are found sculptured on the walls of the temple at Tiruvattur in the North Arcot District. Similar scenes are depicted in the form of painting on the wall of wall of the manlapam of the Golden Lily Tank of the famous Minakshi Temple at Modura."[1]

श्री देसाई द्वारा दिये गये उपरिलिखित तथ्यों पर विचार करने से जो स्पष्ट रुपेण

1. जैनिज्म इन साउथ इंडिया एंड सम जैन इपिग्राफ्स पी. बी. देसाई लिखित - पेज 81-82

सिद्ध हो जाता है कि पेरियपुराण, स्थलपुराण एवं शैव साहित्य के अन्य ग्रंथों में जैन श्रमणों एवं जैन धर्मावलम्बियों के सामूहिक संहार के साथ-साथ बलात्धर्म-परिवर्तन आदि के जो विवरण उपलब्ध होते हैं, वे मदुरा और कांची के शासकों और शैवसन्तों की अभिसन्ति से हुए अवश्य हैं। पर जहाँ तक पेरियपुराण आदि के एतद्विषयक विवरणों में अतिशयोक्ति का एवं अतिरंजन का प्रश्न है, वह वस्तुतः विचारणीय है।

पेरियपुराण आदि शैव ग्रंथों में विद्यमान उल्लेखों में इस बात पर सर्वाधिक बल दिया गया है कि तमिलनाड़ में जैनों के सामूहिक संहार से पहले जैन धर्मावलम्बियों की संख्या अगणित थी, अतिविशाल थी। जैन धर्मानुयायी, विशेषतः जैन श्रमण-जैनाचार्य राजाओं , अमात्यों, राज्याधिकारियों और प्रजा के प्रायः सभी वर्गों पर पूर्णरूपेण छाये हुए थे, सर्वत्र जैन धर्मावलम्बियों का ही वर्चस्व दृष्टिगोचर होता था।

शैव साहित्य में उपलब्ध इन विवरणों पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि इन सामूहिक संहार और बलात्धर्मपरिवर्तन की घटनाओं से पूर्व जैन धर्म संख्या, क्षेत्र विस्तार, वर्चस्व सम्मान आदि सभी दृष्टियों से तमिलनाड़ का एक शक्तिशाली और बहुजनसम्मत प्रमुख धर्म था। संक्षेप में यदि यह कह दिया जाय कि उस समय तमिलनाड़ की भूमि में जैन धर्म की जड़ें बहुत गहरी पहुँच गई थीं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पेरियपुराण में वर्णित जैन धर्मावलम्बियों की तमिलनाड़ में हुए सामूहिक संहारों और बलात्धर्मपरिवर्तन से पूर्व की स्थिति की तुलना में वहाँ जैनों की वर्तमान स्थिति पर विचार करें तो प्रत्येक विचारक को दोनों के आकाश-पाताल जितना अन्तर दृष्टिगोचर होगा। कहाँ तो सामूहिक संहार से पूर्व तमिलनाड़ में जैनों की अगणित संख्या, और कहां आज तमिलनाड़ के मूल निवासी जैनों की 14 हजार जैसी नगण्य संख्या और वह भी अन्यत्र कहीं नहीं, केवल नार्थ आर्कट जिले में इस पर से प्रत्येक निष्पक्ष विचारक स्वतः इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि वहाँ जैनों का संहार वास्तव में इतना भीषण एवं हृदय विदारक था जिसके सामने कोई भी शैव साहित्य में किया गया इस सम्बन्धी विवरण फीका ही लगेगा। यदि ऐसा नहीं होता तो शताब्दियों से गहरी जड़ जमाया हुआ सर्वाधिक लोकप्रिय और बहुजन सम्मत जैन धर्म अपने सुदृढ़ समझे जाने वाले गढ़ मदुरा एवं कांची से, इस प्रकार लुप्त नहीं हो पाता।

आंध्रप्रदेश में जैन धर्म एवं श्वेतांबर संप्रदाय का पतन

धर्मान्धता से उन्मत्त लोगों द्वारा किये गये अपने प्रतिद्वन्द्वी धर्म के अनुयायियों के इस प्रकार के भीषण सामूहिक नरसंहार के विवरण इतिहास के पत्रों में आज भी उपलब्ध हैं। आंध्रप्रदेश में श्रीशैलम् पर अवस्थित मल्लिकार्जुन मंदिर के मुख्य मण्डप के दक्षिणी एवं वाम पार्श्व के स्तम्भों पर संस्कृत भाषा में उट्टंकित साधुओं के भीषण संहार का विवरण आज भी देखा व पढ़ा जा सकता है। उस शिलालेख में लिंगा नामक एक वीर शैवों के नायक द्वारा मंदिर को की गई अनेक भेंटों के विवरण के साथ उसकी इस बात के लिये प्रशंसा की गई है कि उसने (अनेक) श्वेतांबर साधुओं के सिर अपनी तलवार से काट कर उन्हें मौत के घाट उतार दिया। नायक लिंगा द्वारा किये गये श्वेतांबर साधुओं के नृशंस संहार को उक्त शिलालेख में एक पवित्र कार्य बताया गया है।[1]

इससे ऐसा आभास होता है कि तिरु ज्ञानसम्बन्धर और तिरु अप्पर के तत्वावधान में तमिलनाडू में शासकों की सहायता से जो जैनों का सामूहिक संहार किया गया था, उसी से प्रेरणा लेकर वीर शैवों के मुखिया लिंगा ने भी अपनी तलवार से श्वेतांबर जैन साधुओं के सिर काटे हैं।

तेवारम् के माध्यम से तिरु ज्ञानसम्बन्धर और तिरुअप्पर ने जैन श्रमणों के प्रचण्ड विरोध के साथ उनके विरुद्ध जन–जन के मन में जिस प्रकार घोर घृणा फैलाने के प्रयास किये, उनसे भी अनायास अतीत में किये गये उन अत्याचारों की विभीषिकाओं के रोमांचकारी दृश्य हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं, जो अप्पर आदि शैव संतों द्वारा जैनों के विरुद्ध फैलाई गई तीव्र घृणा के परिणामस्वरूप शैवों द्वारा तमिलनाड़ में जैनों पर किये गये। जैनों के विरुद्ध घृणा फैलाने वाले तेवारम् के उन पदों पर आगे दिये जाने वाले ज्ञानसम्बन्धर के परिचय में प्रकाश डालने का प्रयास किया जायगा।

शैव साहित्य में उपलब्ध इस विषयक अधिकांश विवरण चमत्कार प्रदर्शन की दिशा में अतिशयोक्तियों और उपमालंकारों से ओपप्रोत है।अधिकांशतः अशिक्षित

1. एपिग्राफिका इन्डिका, जिल्द 5, पी.पी. 142, एफ. एफ.

अथवा अर्द्धशिक्षित भक्त समुदाय के मानस पर अपने धर्म की एवं धर्मगुरुओं की महानता की छाप अंकित करने के लिए उन विवरणों में चमत्कारपूर्ण अलंकारिक अतिशयोक्तियों को प्रमुख स्थान दिया गया है। मदुरा के स्थलपुराण के आनैमलेइ, नागमलेइ और पशुमलेइ ये तीन विवरण इस दृष्टि से पठनीय एवं मननीय हैं, जो इस प्रकार हैः–

मदुरा नगर के पास उपर्युक्त तीन नामों की तीन पहाड़ियाँ हैं, जिनका आकार ध्यानपूर्वक देखने पर क्रमशः हाथी, नाग और गाय के आकार से मिलता–जुलता प्रतीत होता है।

यह कहने की तो कोई आवश्यकता नहीं कि क्रमशः हाथी नाग और गाय के आकार की मदुरा के पास–पड़ोस की ये तीनों पहाड़ियाँ पुरातन एवं प्रकृति की कृतियाँ हैं। किन्तु स्थल पुराण में इन पहाड़ियों को उपरिवर्णित शैव–जैन संघर्ष काल की शैवों के चमत्कार से उत्पन्न हुई पहाड़ियां बताया गया है।

आनैमलेइ पहाड़ी के सम्बन्ध में स्थलपुराण में उल्लेख है कि एक बार कंजीवरम् के जैन श्रमणों के मदुरा के निवासियों को जैन धर्मावलम्बी बनाने के लिये अपने काले जादू के प्रभाव से एक अति विशाल पर्वताकार हाथी बनाकर पूरे मदुरा नगर को धूलिसात् करने के लिये मदुरा की ओर भेजा। मदुरा के राजा ने अपनी और अपने नगर की रक्षा के लिए शिव से प्रार्थना की। शिव ने तत्काल वहाँ प्रकट हो एक ही बाण के प्रहार से उस हाथी को मारकर धराशायी बना दिया। वही **निष्प्राण हुआ हाथी आनैमलेइ पहाड़ी के रूप में मदुरा के पार्श्व में आज भी विद्यमान है।**

अपने प्रथम काले जादू को इस प्रकार धराशायी हुआ देख उन जैन साधुओं ने अपने काले जादू से एक अति विशाल काला विषधर बनाकर मदुरा को नष्ट करने के लिए भेजा। उसे भी शिव ने एक ही शर के प्रहार से धराशायी कर दिया। नागमलेइ पहाड़ी जैनों के काले जादू के काले नाग की ही अवशेष मात्र है।

तदनन्तर जैन साधुओं ने अपने काले जादू के प्रभाव से गाौ (सांड–वृषभ) उत्पन्न कर मदुरा की ओर भेजा। पिनाकपाणि शिव की कृपा से एक ही वाण के प्रहार से निष्प्राण हो वह वृषभ भी मर गया जो पशुमलेइ पहाड़ी के

रूप में आज भी मदुरई के पास एक ओर विद्यमान है।[1]

उपरोक्त विवरणों से पाठक की यह धारणा बनना स्वाभाविक हो सकता है कि इस धार्मिक विप्लन के परिणाम स्वरूप जैनधर्म अपने शताब्दियों के सुदृढ़ गढ़ तमिलनाडू से उस समय प्रायः लुप्त ही हो गया होगा। परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न ही रही। इन सामूहिक संहारों के घातक प्रहारों के उपरान्त भी उस समय और उससे उत्तरवर्त्ती काल के ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि इन अत्याचारों के चार–पाँच शताब्दियों पश्चात् तक भी, वल्लिमलै (वन्दिनाश ताल्लुक), उत्तरी आर्काट जिला, तिरुक्कुरण्डी, (समेल जिले) में स्थित तग्दूर (धर्मपुरी, त्रावनकोर के कतिपय भागों, चोल राज्य पाण्ड्यराज, टोण्ड–इमण्डलम् उत्तरी आर्काट जिले के विलप्पाकम्, तिरुमलई, उत्तरी आर्काट जिले का वेडाल–विडाल अथवा मादेवी अरिन्दमण्डलम्, कोयम्बतूर जिले के भुडिगोण्डकोलपुरम्, वेणबुवलनाडु के कुम्बनूर, शत्तमंगलम् के देवदान नामक ग्राम, नेलूर जिले के कनुपरतिपाडु आदि तमिलनाडू के अनेकों क्षेत्रों में जैन धर्म खूब फलता–फूलता रहा। इनमें से अनेक स्थान जैनधर्म के प्रचार–प्रसार के उस संक्रान्ति–काल से उत्तरवर्ती कालावधि के प्रमुख केन्द्र थे। पुनः एक बड़ी राजशक्ति के रूप में उदित हुए चोल शासन ने जैन धर्मावलम्बियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण मधुर व्यवहार करना प्रारम्भ किया । तमिलनाडू में स्थान–स्थान पर जैनों के धर्मस्थानों और जैनधर्म के केन्द्रों को ग्राम, भूमि, सम्पत्ति आदि के दान विपुल मात्रा में दिये गये। इससे जैनधर्म तमिलनाडू में शैवों के प्रहारों से पहले की स्थिति में भले ही नहीं आ सका किन्तु फिर भी उसने अपनी स्थिति को पर्याप्तरूपेण अपेक्षाकृत सुदृढ़ किया।[1]

1. जैनिज्म इन साउथ इंडिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स पी. बी. देसाई लिखित–पेज 62
2. मैन्युअल आफ पुदु कोट्टाई स्टेट, वाल्यूम 2, पार्ट 1, पेज 574–7 व 687–8

दक्षिण में जैनों का संघर्ष

इस बात को हम लोग जान गये हैं कि ई. पू. कई सदी पहले से जैनधर्म तमिलनाडु में समृद्ध होकर पनपता आ रहा था। इसका मतलब यह नहीं कि यहाँ दूसरा धर्म नहीं था। उस जमाने में अन्य धर्मवाले भी मौजूद थे। वे, वैदिक धर्म (ब्राह्मण धर्म), बौद्ध धर्म, एवं मक्खली के आजीवक धर्म तीनों थे। इनके अलावा तमिलनाडु का द्राविड़ धर्म भी एक था।

ऊपर कहे गये जैन, बौद्ध आजीवक और वैदिक ये चारों धर्म वाले आपस में लड़कर एक दूसरे को गिराने के प्रयत्न में लगे हुए थे। इसलिये इनकी लड़ाई के बारे में जानना आवश्यक है।

इन धर्मों की लड़ाई में आजीवक धर्म शक्तिहीन होकर तिरोहित हो गया। बाकी जैन, बौद्ध, वैदिक (वेद-आधारित) तीनों बहुत काल तक आपस में लड़ते रहे1।

इनमें वैदिक धर्मवालों की हालत भी बिगड़ने लगी। इसका कारण यह है कि वैदिक हवन में हिंसा होती थी। ब्राह्मण लोग ऊँच-नीच का विचार रखते थे। अपने वेदशास्त्र का अध्ययन अन्य मतवालों को नहीं करने देते थे। ये लोग स्वर्णदान, क्षेत्रदान, गोदान, महिषदान, अश्वदान, गजदान और कन्यादान को प्राप्त करने में ही ज्यादा दिलचस्पी रखा करते थे। जैन और बौद्ध साधारण जनता के लिए शास्त्रदान, विद्यादान, औषधदान और अभयदान दिया करते थे। इन कारणों से जैन-बौद्ध के समान वैदिक मत पनप नहीं रहा था।

जैन-बौद्ध के पनपने का कारण यह था कि पहले कहे अनुसार इनके धर्म के प्रचार में साधुओं का हाथ ज्यादा था। इसके अलावा शिक्षा देना, रोगियों का रोग निवारण करना यह अच्छी सेवा थी। हिंसा और माँस भक्षण नहीं करते थे। लोकप्रिय कार्यों से जनता आकृष्ट हो जाती थी।

दुर्भाग्य की बात यह है कि ये दोनों (जैन-बौद्ध) मिल-जुलकर नहीं रहे। आपस में लड़ते थे। इसका आधार नीलकेशी और कुण्डलकेशी ग्रंथ हैं। इन दोनों तमिल ग्रंथों में, आपस के मतभेद का खण्डन है। आमिर बौद्धमत के अन्दर भेदभाव होने से इस की शक्ति क्षीण हो गयी। ई. 8वीं सदी (ई. 753) में जैन धर्म

1. मणिमेखलै काव्य 13 वॉ पद्य

के महान आचार्य अकलंक महाराज ने कांजीपुरं नगर के कामाक्षी मंदिर में[1] बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ किया। बौद्ध लोग उस वाद में हार जाने से, सारे के सारे लंकाद्वीप चले गये। इस कारण से भी बौद्ध धर्म क्षीण हो गया।

समृद्ध जैन धर्म भी ज्यादा दिन तक टिक नहीं सका। उसका कारण है कि हिन्दू धर्म में भक्तिमार्ग का प्रवेश हुआ। वह कैसा था? इसके बारे में आगे विचार किया जायगा।

पुराने जमाने में इन धर्मों के साथ, एक द्राविड़मत (धर्म) का जिक्र किया गया था। उक्त द्राविड़ मतवाले षण्मुख, शिव–पार्वती और विष्णु की पूजा भक्ति करते थे। ये लोग काली (कोट्रवै) माता को बलि (जीव हिंसा) दिया करते थे। लेकिन शिव और विष्णु देवता के सामने उनके जीव–हिंसा (बलि) का आधार नहीं मिलता है। इसके अलावा, उस समय वैदिक धर्म के सिवाय शैव–वैष्णव धर्म अलग–अलग दिखाई नहीं देते थे।

ऐसी परिस्थिति में वैदिक धर्मवाले आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे। इन लोगों को आगे बढ़ना है तो जैन–बौद्धों को गिराना है। तभी काम बन सकता है। ये लोग उसके लिए रास्ता ढूँढने लगे। उन लोगों को यही दिखने लगा कि जैन–बौद्धों को हराना हो, तो हमें द्रविड़ मतों के साथ मिल जाना है। तभी साधारण लोगों को अपनी तरफ खींच सकते हैं। इसी उद्देश्य से वैदिक धर्मवाले, द्रविड़ धर्मवालों के षण्मुख, कालीमाता, शिव–विष्णु आदि देवताओं को अपने देवता के रूप में स्वीकार करने लगे। सिर्फ इतना ही नहीं, द्रविड़ धर्म के देवताओं के साथ संबंध भी जोड़ने लगे। उन देवताओं के नये–नये नाम कल्पित करने लगे। जैसे षण्मुख के साथ सुब्रमण्यम्, कन्दन, मुरुगन आदि नाम जोड़ा गया। तमिलनाडु की देवी बल्लिदैवानै को उनकी पत्नी बनाया गया। इस तरह आर्य–द्रविड़ सम्बन्ध होने लगा।

एक जमाने में वैदिक लोग 'शिश्नदेव' लिंग का उपहास करते थे। बाद में उसी को उत्कृष्ट देवता मानकर शीव का चिह्न मान लिया गया। पार्वती को शिव की पत्नी बना दिया गया। लेकिन केरल में पार्वती (काली) को शिव की पत्नी न

1. हिमशीतल महाराज के दरबार में हुआ था। इसका प्रमाण अकलंकाष्टक है। श्लोकः– 'नाहं कारवशीकृतेन मनसा.... राज्ञः श्री हिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मानो बौद्धौधान् सकलानविजित्य स घटः पादेन विस्फाटितः'

मानकर बहिन मानते आ रहे हैं।

षण्मुख को शिव और पार्वती का पुत्र मान लिया गया। महाराष्ट्र से आये विनायक को भी पुत्र मान लिया गया। वैसे ही विष्णु को मायोन, तिरुमाल, नारायण आदि नाम दिया गया। इन सब की नयी–नयी कथायें कल्पित कर दी गयीं। नया पुराण भी लिख दिया गया। इस तरह वैदिक मत (धर्म) अलग–अलग न रहकर एक ही हिन्दू मत (धर्म) में परिवर्तित कर दिये गये। इन दोनों की मिलावट एकदम नहीं हुई। इस प्रक्रिया में सैकड़ों साल बीत गये।

जैनधर्म का ह्रास और उसके प्रमाण

हिन्दू धर्म के अन्दर भक्तिमार्ग प्रवेश करने के बाद, उसने जैन धर्म पर आक्रमण करना शुरु किया। भक्तिमार्ग ने जैनधर्म को कैसे गिराया, इस पर जरा विचार करेंगे। मोक्ष प्राप्त करने के लिये जैन धर्म और हिन्दू धर्म दोनों का विचार क्या है? इसके बारे में पहले जानना जरुरी है।

जैनधर्म– इनके अरिहन्त परमात्मा राग–द्वेष से मुक्त हैं। उनकी जो भक्ति करते हैं या नहीं करते हैं, दोनों की अवस्था एक अपेक्षा से बराबर की हैं। वे भगवान न देते हैं और न लेते हैं। परन्तु उन्होंने मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बताया है। प्रत्येक व्यक्ति उनके बताये गये मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मोक्ष प्राप्त करना हो तो सदाचार की बड़ी जरुरत है। सदाचार रूपी तप से मोक्ष मिलता है। इसके लिये प्रयत्न करना पड़ेगा।

हिन्दू धर्म– गृहस्थ, यति, नारी, सभी मोक्ष पा सकते हैं। किसी को रोक–टोक नहीं। इसके लिये भक्ति मात्र काफी है। 'भक्ति से मुक्ति' यह उन की नीति है। चाहे जितना भी पाप किया हो, ऐसे पापी व्यक्ति भी शिव (भगवान) के चरणों का भक्त बन जायेगा, तो शिवजी उस के सारे पापों को मिटा कर पवित्र बना दते हैं। साथ–ही–साथ उसे मोक्ष का भी पात्र बनाते हैं। यह शिव भगवान की महिमा है। बनाना बिगाड़ना सब उनके हाथ में है। इस बात को उनके ''नालायिरं तिरुमालै'' ग्रंथ में लिखा मिलता है। उनके 'तेवारं' आदि ग्रंथ में भी इसके कई उदाहरण हैं।

हिन्दुओं के मतानुसार, गृहस्थ स्त्री–पुरुषों को और भयंकर–से–भयंकर पापी को भक्ति से मोक्ष मिलता है। कोई कठिन परिश्रम करने की जरुरत नहीं है। आचार–विचार, सदाचार, कठिन तप आदि किसी की भी जरुरत नहीं है। केवल भक्ति करनी है बस, मुक्ति मिल जाती है। इस तरह खूब प्रचार होने लगा। भयंकर पापी से लेकर पतित तक सभी को बिना परिश्रम के घर बैठे–बैठे, भोग–भोगते, किसी तरह की रुकावट के बिना आसानी से मोक्ष मिलता है तो, इसे कोई छोड़ सकता है? कभी नहीं। साधारण जनता आसानी को पकड़ती है और कठिन को छोड़ती है। हर आदमी यही चाहता है कि परिश्रम के बिना मोक्ष मिल जाय। किसी ने मोक्ष को देखा नहीं। देखे हुए व्यक्ति से सुना भी नहीं। मुक्ति तप करने वाले को मिलती है या भक्ति करने वाले को। कोई देखकर बोलने वाला भी नहीं है। जो बड़े हैं, वे जो कुछ कहें, उस मत (धर्म) को विश्वास से सत्य मान लिया जाता है।

मतान्ध लोगों की विचार करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर क्या रहा? चाहे सत्य हो अथवा असत्य हो, अपने–अपने धर्म के आचार्य से कह देने पर मान लिया जाता था। धर्माचार्य के सामने किसी को बोलने की गुंजाइश नहीं थी। वह तो भगवान का ठेकेदार , चेला समझा जाता था। उस के मुँह से जो कुछ निकलता था, वह भगवान की वाणी समझी जाती थी। अंधविश्वास का जमाना था।

हिन्दु धर्म का भक्तिमार्ग आसान और सरल था। ऐसे सुलभ मार्ग को छोड़कर पुत्र–मित्र–कलत्र, धन–धान्य आदि सभी परिग्रहों को, सांसारिक भोग–विलास को छोड़कर पाँचों इंद्रियों को दबाकर, कठिन तप के द्वारा आठों कर्मों का नाश कर, ज्ञानवीर होते हुए मोक्ष प्राप्त करने कौन आयेगा? कोई नहीं आता। इसलिये साधारण लोग, आसान भक्ति मार्ग को अपनाने लगे। इससे जैन धर्म की वृद्धि क्षीण होने लगी। हिन्दु धर्म की अभिवृद्धि नजर आने लगी।

लेकिन भक्तिमार्ग से ही जैन धर्म क्षीण हो गया हो, ऐसा समझना ठीक नहीं है। हिन्दू धर्मवालों ने जैनधर्म की अभिवृद्धि रोकने के लिये कई तरीकों को अपनाया। धर्म के वितरीत बलात्कार आदि कई दुष्कृत्यों का उपयोग किया गया। इसके कई आधार हैं[1] इसके बारे में ज्यादा लिखना उचित नहीं है। इस तरह धर्म के माध्यम से आपस में जो लड़ाई हुई थी, वह ईस्वी 7, 8, 9 वीं सदी की थी।

हिन्दू धर्म के अन्दर भी शैव–वैष्णवों की लड़ाई हुई थी। परन्तु जैनियों के साथ लड़ते समय दोनों मिल जाते थे। उन दोनों की लड़ाई पीछे की है। तेवारं नामक शैव ग्रंथ में जिन–जिन मंदिरों का जिक्र किया गया थी, उन सभी स्थानों में जैन–बौद्धों का निवासस्थान, मंदिर, पाठशाला आदि थे। उन सबको धीन कर बदल दिया गया।

जैन धर्म के लोग हर तरह प्रताड़ित हुए थे। उन लोगों के साथ हिंसा करना, शूली पर चढ़ाना, कलह करना, धन–धान्य, घर–बार सब को छीन लेना आदि अत्याचार हुए थे। धर्म विद्वेष के कारण भयंकर हत्याकांड हुआ था। इन सबका आधार उन लोगों के ही ग्रंथ हैं।[2]

''अन्न वण्णं आरुरिल... पन्नुं पालिप्पल्लिकलुं परित्तु

1. समणमुं–तमिलुंः 66, 67
2. समणमुं–तमिलुंः 70, 71

क्कुलंसूल करै पडुत्तु'' (शैव पेरियपुराणं)

इसका मतलब है कि श्रमणों (जैनों) के कई घर, धर्मशाला, पाठशाला आदि छीन कर बड़ा तालाब बनाया गया था।

''तलैये आगे अरुप्पदे करूमं कण्डाय''

(शैव–आलवार तिरुप्पाडल ग्रंथ।)

इसका मतलब है कि जैनियों के सिर काटो, यही तुम्हारा काम है। इसके उदाहरण के रूप में, शैवों के पेरियपुराणं, तिरुविलैयाडर, पुराण आदि ग्रंथों में बतलाया गया है कि आठ हजार जैन साधुओं को शूली पर चढ़ाकर मारा गया था। दक्षिण मथुरा के शिव मंदिर की दीवार पर इसका दृश्य उत्कीर्णित किया हुआ है। हर साल शैव लोग इसकी स्मृति के रूप में दस दिन उत्सव मनाकर नाटक दिखाते हैं।

कांजीपुरं के पास 'तिरुवोत्तूर' में इस तरह का कलहकारी कार्य हुआ था। वहाँ के शैव मंदिर में यह दृश्य उत्कीर्णित रूप में मौजूह है। चोल देश के 'परैयार' में भी यही हुआ था। इसका जिक्र शैव तिरुत्तोण्डर पुराण ग्रंथ में है। तिरुवारूर में भी इस तरह का कलहकारी कार्य हुआ था। जैनों के मठ, पाठशाला, घर–बार आदि छीन लिए गए थे। यह बात शैव पेरिय पुराणं में है–

'पन्नुं पालि पल्लि कलुं परित्तुक्कुलं सूल करै पडुत्तु' (शैव पेरिय पुराण)

इसका मतलब है कि जैनों के मठ, पाठशाला, घर–बार आदि छीन लिये गये थे। इस तरह जैनों को सूली पर चढ़ाना, हाथी के पैरों तले दबाकर मारना, गाँव से भगाना, जमीन जायदाद छीन लेना आदि भयंकर अत्याचार एवं कलह हुआ था[1]।

करीब पाँच सौ वर्ष के पहले साऊथ आर्काड के 'जिंजी' नगर में ई. 1478 के समय 'वेंकट पति नायकन' नाम का छोटा सा राजा राज करता था। उसे 'दुबाल कृष्णप्पनायकन' के नाम से भी पुकारते थे। यह विजयनगर साम्राज्य के अधीन तेलगू वंश का था। उसका विचार यह था कि ऊँचे कुलवालों के यहाँ से एक लड़की से शादी कर लेना आवश्यक है। उसने ब्राह्मणों को बुलाकर लड़की देने के वास्ते पूछा। उन लोगों को उसे लड़की देने की इच्छा नहीं थी। किन्तु राजा के

2. शैव तिरुतोण्डर पुराणं और दण्डियडिगल पुराणं–27

सामने मना नहीं कर सकते। इसलिये उन लोगों ने चालाकी से यह कहा कि हम लोगों से श्रमण याने जैन ऊँचे हैं, आप उनसे एक लड़की लीजिये, तब हम भी दे देंगे। वह राजा मूर्ख एवं अन्यायी था। उसने वैसे ही जैनियों से भी एक लड़की माँगी। जैनों को भी उसे लड़की देने की इच्छा नहीं थी। मना करें तो उपद्रव मचायेगा। इस विचार से एक नतीजे पर आये। राजा से यह कहा गया कि अमुक दिन अमुक जगह पर आइये। वहाँ आप को लड़की मिल जायेगी। तदनन्तर जैनियों ने एक घर को खाली कर साफ–सुथरा किया। खूब दीप जलाये, एक कुतिया को नहलवा कर, तिलक लगवाया और उसे बांध कर चले गये। राजा ने आकर देखा। कोई आदमी नहीं था। सिर्फ कुतिया बंधी हुई थी।

उसे देखकर राजा को बड़ा गुस्सा आया। उसने इसे अपना अपमान समझा। इसलिये जैनियों को दण्ड देने के विचार से कत्ल करना शुरु किया। जैसे एक का सिर काटकर दूसरे के सिर पर रखना। इस तरह दस–दस आदमियों को मारता जाता था। उन्हें एक आदमी ढोता था। इसे 'सुमन्तान तले पत्तु' अर्थात्, काटे गये दस सिर को ढोने वाले कहते हैं। उस समय हजारों जैन लोग मारे गये। जैन लोगों ने बेमतलब आपत्ति मोल ली थी। उस जमाने में सारे जैन लोग जनेऊ पहनते थे। बहुत से लोग उसे फंक कर डर के मार शैव बन गये। अब भी उस जाति वाले शैव के रूप में रहते हैं। उनको नैनार कहते हैं। यहाँ स्थानीय जैनों को भी नैनार कहा जाता है। दोनों का फर्क इतना है कि वे रात में खाते हैं, सिर पर राख लगाते हैं, जनेऊ नहीं पहनते। स्थानीय जैन लोग इन तीनों से परे हैं। उन लोगों को 'नीरपूसी नैनार' याने माथे पर राख लगाने वाला कहा जाता है। उनकी संख्या भी काफी है। यदि वे लोग भी जैन रहते तो आज तमिलनाडु में जैनों की लाखों की संख्या होती। जैन धर्म के ऊपर क्या–क्या और कैसी–कैसी आपत्तियाँ नहीं आयीं? जैन लोगों ने इन सबको झेला। इन सभी आपत्तियों से अभी तक कुछ लोग बचे हैं। उन की संख्या करीब पचास हजार है।

उस समय जिंजी के पास वेलूर में ''वीरसेनाचार्य'' नामके एक मुनि तटाक के किनारे तप कर रहे थे। सेवक उसे पकड़कर राजा के पास ले गया। उस समय राजा पुत्रोत्तपत्ति की खीशी में था। इसलिये मुनि को छोड़ दिया। वे श्रवणबेलगोल चले गये।

जिंजी राजा के अत्याचार के समय जिंजी के पास तायनूर गांव में 'गाँगेय उडैयार'' नाम के बड़े व्यक्ति रहते थे। वे उडैयार पालैयं छोटे राजा के पास अभय की दृष्टि से गये थे। वह राजा बड़ा दयालु था। उसने आदर दिया और जमीन जायदाद भी दी। वे ही महाशय दंगा शान्त होने के बाद श्रवणबेलगोल गये थे। वहाँ विराजमान वीरसेनाचार्य महाराज को लेकर आये। यहाँ जो लोग मत परिवर्तन करके शैव बन गये थे, उन्हें फिर से जैन बनवाया गया था। वीरसेनाचार्य महाराज ने उन लोगों को यज्ञोपवीत पहनाकर जैन धर्म में दीक्षित किया था। सबको नहीं कर पाये। उस उडैयार परंपरा के लोग जैन समाज में आज भी मौजूद हैं। वे लोग शादी–ब्याह आदि में कहीं भी जावें, समाज उन लोगों को आगे बिठाकर सम्मान करता है। वह कार्य आज तक चालू है।

कुछ जैन लोग भयंकर कलह के समय अपना धर्म छोड़कर, अपनी जीवनरक्षा के निमित्त शैव बने, कुछ लोग वैष्णव बने और कुछ मुसलमान बने। इसके उदाहरण में देख सकते हैं कि केरल के आसपास आज भी कुछ मुस्लिम लोग अपने नाम के साथ ''जैन अल्लाउद्दीन'' नैनार मुहमद लिखते हैं। ये सब जैन परंपरा के हैं। धर्म को छोड़ा, मगर जैन शब्द को नहीं छोड़ सके। उसे अपने नाम के साथ लिखते ही हैं।

तमिल भाषा में पाठशाला को 'पल्लि' कहते हैं। तमिलनाडु में मुस्लिमों की मसजिद को पल्लिवासल के नाम से पुकारा जाता है। जैनों की ''पल्लि'' पल्लिवासल के नाम से बदल दी गयी है। इस तरह बगावत के समय जैन धर्म छिन्न–भिन्न होकर नष्ट–भ्रष्ट हो गया था।

जैन लोगों ने हिन्दू धर्म में परिवर्तित होने के बाद, अपने आचरण को उस धर्म में मिला दिया। इसके बारे में आगे–विचार किया जायगा। इसमें दो बातें हैं। एक जो जैन आचरण को हिन्दू धर्म से मिलाया। दूसरा यह है कि हिन्दू धर्मवाले जैनियों के कुछ अच्छे आचरण को नहीं छोड़ सके। उसे इसमें मिलाया। तीसरा यह है कि हिन्दू धर्मवालों ने जैनियों के कुछ अच्छे आचरण को ले लिया। वे कौन से हैं?

हिन्दू धर्म में जैनधर्म का आचरण

माँस त्याग – हिन्दू धर्म ने जैन धर्म से माँस त्याग के आचरण को ले लिया था। हिन्दू लोग, 'कालिमाता', 'कोट्रवै' आदि देवताओं को मुर्गे, बकरे आदि जीव बलि देकर उस के मांस को खाते थे। पहले के जमाने में ब्राह्मण लोग भी इन्द्र, वरूण आदि देवों घोड़े, बैल आदि जीवों की बलि देकर उनका माँस खाते थे1। ऋषियों को, भोजन खिलाते समय और श्राद्ध के समय बछड़े, बकरे, हिरण आदि जीवों का मांस पकाकर खिलाया जाता था। जितना अधिक माँस हो, उतना श्रेष्ठ माना जाता था। इन लोगों पर माँस त्याग का प्रभाव जैनधर्म का ही है।

जब जैनधर्म उन्नत स्थिति में था उस समय जैन लोग माँस खाना, जीव हिंसा करना मछली पकड़ना, जुआ खेलना आदि कार्यों को करते तो नहीं थे, साथ-ही-साथ करने वालों को नीच भी समझते थे।

''विलंगिन मार्कोन्टु.... नरपति आदि दे'' (जीवक चिन्तामणि जैन काव्य)

जैन लोगों ने कलह के समय, अपने धर्म को तो छोड़ा, परन्तु प्राण से प्यारी अहिंसा को नहीं छोड़ सके। बल्कि उसे हिन्दू धर्म का अंग बना दिया।

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध अहिंसा का प्रचार तो करते थे, मगर माँस त्याग पर जौर नहीं देते थे। इसलिये सारे बौद्ध लोग माँसाहारी हैं। अतः आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने तिरुक्कुरल महाकाव्य में बतलाया है कि-'कोल्लान पुलालै मरुत्तानै कैकूषि एल्ला उयिरुतोलुं' अर्थात् अहिंसा के साथ जो व्यक्ति माँस त्यागी होता है उसे संसार के सारे प्राणी हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। उन्होंने खास कर बौद्धों के खण्डन के रूप में यह बात कही थी।

आज भी लंकाद्वीप में शाकाहार को 'आर्हत भोजन' कहते हैं।''आर्हत भोजन'' माने अरिहंत भगवान की परंपरा का अहिंसामय भोजन। देखिये ! कितना मधुर शब्द है। जैन लोग भी इस शब्द का उपयोग नहीं करते।

दीपावली : यह धार्मिक त्यौहर जैनियों से हिन्दू लोगों ने स्वीकार कर लिया है। जैन लोग भगवान महावीर के मोक्ष प्राप्ति के दिन को, बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। समझने की बात यह है कि साधारण लोग मर जावें, तो लोग उसे दुख दिन समझ कर रोते हैं और अशुभ समझते हैं। परन्तु भगवान के मोक्ष प्राप्त करने से, उसे मंगल एवं कल्याण का दिन समझकर दीपालंकार के साथ उत्सव मनाते हैं।

यह जैनियों से उधार लिया गया त्यौहर है। बाद में, उसकी कई काल्पनिक कथायें जोड़ दी गयी हैं।[1]

शिवरात्रि : यह त्यौहार को जैन और शैव दोनों मानते और मनाते हैं। जैन मंदिर और शैव मंदिर में उस दिन बड़ी जोरदार पूजा होती है। दोनों का माह, पक्ष, तिथि, नक्षत्र आदि एक ही है। जैन लोग, चूँ कि उस दिन भगवान आदिनाथ कैलाश पर्वत परसे मोक्ष गये थे, इसलिये उसका मोक्ष कल्याणक मनाते हैं।

हिन्दू लोग उस दिन शिवजी की पूजा करने से शिव गति की प्राप्ति मानते हैं। इसी उद्देश्य से मनाते हैं। जैन लोगों ने हिन्दू बनने से, इसे भी उस धर्म में मिला दिया है। मोक्ष को शिवगति भी कहते हैं। आदिनाथ भगवान को शिवगति नायक, शिव आदि नामों से जैन ग्रंथों में स्मरण किया गया है। शैव ग्रंथ तेवारं में शिवगति शब्द पाया जाता है। इससे कहना यह है कि यह भी जैनियों के लिया हुआ है। शैवों का त्योहार मानने में, खास कारण मालूम नहीं होता।

कैलाशगिरी : जैन लोगों का विश्वास एवं शास्त्रधार है कि भगवान ऋषभदेव कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किये थे। हिन्दू लोग कहते हैं कि उनके शिवजी कैलाश पर्वत पर रहते हैं। यह भी दोनों में समानता है।

बैल : जैन लोग भगवान ऋषभदेव का चिन्ह वृषभ मानते हैं। हिन्दू लोग भी शिवजी का वाहन बैल मानते हैं। इसके अलावा धर्म का स्वरूप बैल, जैन लोगों से लिया गया है। इस बात को 'जीवक चिन्तामणि' का 34 वाँ पद्य बतलाता है कि धर्म का चिन्ह बैल है।

त्रिषष्ठिशलाकापुरुष : जैन धर्म के अन्दर त्रिषष्टि शलाका पुरुष माने गये हैं– 24 तीर्थंकर, 12– चक्रवर्ती, 9– बलदेव, 9– वासुदेव व 9–प्रतिवासुदेव। इसकी देखा–देखी शैव लोग भी 63 शैव नायनमार (भक्त) मानते हैं। लेकिन उन के पेरियपुराणं में ऐसा नहीं कहा गया है।

सिद्धों को नमस्कार : प्राचीन काल में (जैनियों के जमाने में) छोटे बच्चों को शास्त्राभ्यास शुरु करते समय 'नमःसिद्धेभ्यः' मंगल के रूप में कहा जाता था। आजकल वह पद्धति हट गयी। तमिलनाडु के समान कर्नाटक में भी 'सिद्धं नमः' कह कर अक्षराभ्यास शुरु किया जाता था। आन्ध्र में भी 'ओम् नमः शिवाय सिद्धं

1. समणमुं–तमिलुं: 80

नमः'' कहा जाता था। इन लोगों ने शिवाय शब्द जोड़ लिया। इस तरह द्राविड़ के साथ प्रांत में यह पद्धति चलती थी। सभी जगह जैन साधुगण ही जैन–अजैन सभी बच्चों को विद्याध्ययन कराते थे। उस जमाने में आजकल की तरह पाठशाला की व्यवस्था नहीं थी। यह कार्य केवल जैन साधुओं के हाथ में था। वे सिद्धों को नमस्कार किये बिना कैसे शुरु करते ? कदापि नहीं।

साधु महात्माओं के निवासस्थान एवं विद्याभ्यास स्था (दोनों एक हैं) पल्लि के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ पर अमीर–गरीब, जैन–अजैन, छोटा–बड़ा के भेद–भाव के बिना ही पढ़ाया जाता था। इस कारण सभी जाति के लोग साधु महात्माओं के भक्त रहा करते थे। साधुओं के विद्याभ्यास स्थानरूप 'पल्लि' आजकल 'पल्लिक्कूडं' के नाम से पुकारा जाता है। वह 'पल्लि' नाम आज तक चालू है जो जैन साधु महात्माओं की सेवा की याद दिलाता रहता है।

जैनधर्म के भगवानों को हिन्दू धर्म में मिला लेने का साहस

हिन्दू धर्म के शैव–वैष्णव लोग जैन धर्म को खत्म करने के लिये कई तरीकों को अख्तियार करते थे। उनमें यह भी एक है। उसके लिये कई कल्पित कथायें तैयार कर ली गई थीं।

विष्णुजी ने जैनधर्म का उपदेश दिया है। इस तरह की एक कथा कहकर जैनधर्म स्वतंत्र धर्म नहीं है, हिन्दू धर्म का एक अंग है। इस रूप में जैनधर्म को मिटाने का प्रयत्न किया गया था। इसके बारे में 'विष्णुपुराण' के अन्दर एक कथा है। वह यह है कि जैन–बौद्धों को असुर और हिन्दुओं को देव बताया गया है मत्स्यपुराण में भी इस कथा का सम्बन्ध जोड़ा गया है।

विष्णुपुराण की कथा यह है कि असुर और देवों का युद्ध हुआ। उस युद्ध में देव हार गये। देव लोग विष्णु के पास जाकर सहायता माँगने लगे। विष्णु ने अपने शरीर से 'माया मोह' नाम के एक व्यक्ति को तैयार कर भेजा। उसने जाकर असुरों को नग्न श्रमण धर्म उपदेश देकर आर्हत बनाया। उसी आर्हत धर्म को कहते हैं। जैनधर्म। इसका मतलब यह है कि जैनधर्म विष्णु से उत्पन्न धर्म है।

अग्निपुराण और कांजी माहात्म्यं में भी यह कथा है। परंतु नाम वगैरह कुछ बदला गया है। भागवतपुराण में बतलाया गया है कि विष्णु महाराज ने बुद्ध और

वृषभदेव का अवतार लेकर बौद्ध और श्रमण (जैन) धर्मों का उपदेश दिया था।

'विष्णुपुराण' में भी यही कथा है। परमात्मतन्त्र नामक वैष्णव आगम ग्रंथ में बताया गया है कि विष्णु जी ने योग, सांख्य, बौद्ध, आर्हत (जैन) आदि धर्मों की सृष्टि की थी।

नम्मालवार नामक वैष्णव भक्त का कथन है कि – विष्णुजी ने श्रमण, बौद्ध मतों की सृष्टि की है।

वैष्णव ग्रंथ के समान शैव ग्रंथ तेवारं भी यह बतलाता है कि विष्णु, बुद्ध मुनि बने और नारद, श्रमण मुनि बने। इन दोनों ने जाकर असुर लोगों को वश में करने के लिये बौद्ध, श्रमण (जैन) धर्म का उपदेश दिया।

तिरुक्कूवप्पुराण बतलाता है कि विष्णु ने बुद्ध, अर्हत्, जिनन् तीन रूप धारण कर असुरों को बौद्ध–जैन धर्म का उपदेश दिया है। यहाँ पर अवुण शब्द का प्रयोग है। अवुण का मतलब है– 'असुर'।

जैन–बौद्धों को असुर बनाकर एक तरफ किया गया और हिन्दुओं को देव बनाकर एक तरफ किया गया। दोनों का युद्ध हुआ। इसमें असुर जो जैन–बौद्ध थे वे जीते और वैदिक देव हारे। इसका मतलब यह रहा कि तर्क (वाद–विवाद) में वैदिक लोग, जैन–बौद्धों को जीत नहीं करे। परन्तु विष्णु, शिव और इन्द्र की सहायता से जीते। अर्थात् साम, भेद दाम रूपी सरल उपाय से नहीं जीते। परन्तु दण्डरूपी बलात्कार से जीते । यही अर्थ ध्वनित होता है।

अब तक वैष्णवपुराण देखा। अब 'शैवपुराण' को देखिये। उसका कथन क्या है?

शैव पुराण के आधार से शिवजी ने तीन पुरों को जीता। इसलिये उनका नाम है 'त्रिपुरारि'–तीन पुरों को जीतने वाला। तीन पुर (नगर) की कल्पना बराबर नहीं है। परन्तु वास्तविक बात यह है कि जैनियों के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र तीन थे। वैसे ही बौद्धों के बुद्ध, धम्म, संघ से तीन थे। उन लोगों ने इन तीनों को तीन नगर की कल्पना कर ली। जैसे–तैसे इन दोनों मतों (धर्मों) को जीतने से शिवजी ने तीनों नगरों को जीत लिया। इस तरह की कथा कल्पित कर जोड़ ली गई हैं। और भी कई कथायें हैं, जिन्हें ग्रंथ विस्तार के भय से नहीं दिया जा रहा है।

इस तरह जैन–बौद्धों को दबाने एवं खत्म करने के वास्ते कल्पित कथाओं का सहारा भी लिया गया था।

शैव संत (?) तिरु ज्ञान सम्बन्धर एवं तिरु अप्पर का जीवन वृत्त...

शैव सम्प्रदाय का भारत के दक्षिणी प्रदेश तमिलनाड़ में पुनरुद्धार अथवा पुनरुत्थान करने वाले शैव सन्तों में तिरु ज्ञान सम्बन्धर और तिरु अप्पर के नाम शीर्ष स्थान में आते हैं। तिरु ज्ञान सम्बन्ध और तिरु अप्पर जिस प्रकार दक्षिण में और मुख्यतः तमिलनाड़ में शैवधर्म के पुनरुद्धार के अभियान के सूत्रधार माने गये हैं, उसी प्रकार जैनधर्म को गहरी क्षति पहुँचाने वालों के भी ये सूत्रधार माने जाते हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में जो परिचय पर्याप्त प्रयास के पश्चात् प्राप्त हो सका है, उसे यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

तिरु ज्ञान सम्बन्धर को शैव साहित्य में स्थान-स्थान पर ज्ञान सम्बन्धर मूर्ति नायनार और सम्बन्धर के नाम से अभिहित किया गया है। इसका एक और नाम- पल्लि नायनार भी उपलब्ध होता है। पिल्ले नायनार का जन्म तन्जौर जिले के शियाली नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। ज्ञान सम्बन्धर द्वारा रचित तेवारम् के कतिपय पदों के आधार पर कतिपय विद्वानों द्वारा अनुमान किया गया है वह शिरुत्तोंडा अपर नाम दभ्रभक्त नामक एक यशस्वी सेनापति का परम मित्र था। पल्लवराज नरसिंहवर्मन (महेन्द्रवर्मन प्रथम जिसे अप्पर ने जैन से शैव बनाया था, उसके पुत्र) ने पश्चिमी चालुक्यों की राजधानी वातापी (बादामी) पर आक्रमण कर उस पर अधिकार किया, उस युद्ध में यह शिरुत्तोंडा दभ्रभक्त सेनापति था। इस नरसिंहवर्मन का शासनकाल 630 से 668 ई. माना गया है।

डा. शाम शास्त्री ने शोध के पश्चात् यह अभिमत व्यक्त किया है कि ज्ञानसम्बन्धर और अप्पर के साथ वादीभसिंह नामक एक महान् दार्शनिक एवं कवि तथा वादीश (जैन मुनि) ने शैव धर्म के गुण-दोष विषय पर वाद-विवाद किया था। जयधवला एवं आदि पुराण के रचनाकार पंचस्तूपान्वयी आचार्य जिनसेन ने वादीभसिंह के गुणों का कीर्तन करते हुए आदि पुराण में उनका निम्नलिखित रूप में स्मरण किया है-

कवित्वस्य परासीमा, वाग्मितस्य परं पदम्।

गमकत्वस्य पर्यन्तों, वादिसिंहीऽर्च्यते न कैः।।

जिनसेन ने ई. सन् 837 में जयधवला टीका की रचना पूर्ण की। जिनसेन ने

अपने से पूर्व हुए वादीभसिंह को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया है, इससे वादीभसिंह का समय ईसा की सातवीं–आठवीं शताब्दी के बीच का अनुमानित किया जा सकता है।

जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति इनके समकालीन थे उनके ना हैंः–

1) तिरु ज्ञानसम्बन्धर, 2) सुन्दर पाण्ड्य, 3) पल्लव राज महेन्द्रवर्मन, 4) पल्लवराजा नरसिंहवर्मन, 5) पल्लव सेनापति शिरुत्तौण्डादभ्रभक्त, और वादीभसिंह (अपर नाम आचार्य अजितसेन और ओडयदेव)।

तिरु ज्ञानसम्बन्धर ने मदुरा में जैनों का सामूहिक संहार और धर्मपरिवर्तन करवाने के अनन्तर शैव धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ स्थान–स्थान पर घूम–घूम कर अपनी कविताओं के माध्यम से जनमानस में जैन साधुओं एवं बौद्धों के प्रति घृणा फैलाने का प्रयास किया। उन कविताओं में से कतिपय पद यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैंः–

1. **बुद्ध रोडु पोरियिन समनुम पुरंकूरि नेरीनल्लार**

   ''ब्रह्मपुर पदीकम्''

   अर्थात् बौद्ध मुनि बुद्धिहीन और जैन मुनि सत्य के बदले झूठ बोलने वाले होते हैं। ऐसे लोग धर्म के रास्ते में कभी नहीं टीक सकेंगे।

2. **सैदा अवत्तर मीगु तेररगल साक्कियर सेप्पिर पोरुल अल्लाकद। अवत्तर मोलियै तविर वारगल 'तिक पुगलूर पदीक्कम''**

   अर्थात् इन लोगों (बौद्धों और जैनों) की अर्थहीन बातों को लोग मानना छोड़ देंगे, क्योंकि उनकी बातों से किसी कार्यसिद्धि का होना असंभव है। अतः उनकी बातें अर्थहीन और किसी भी काम की नहीं।

3. **आसियार मोलियार अमन (जैन साधु) साक्कियर अल्लादवर। ''कूड़ि–कूड़ि एसी ईरमिलराय मोलि सैदवर सोल्लं पोरुलेन्नेल।''**

   अर्थात् – अपने भक्तजनों को बौद्ध मुनि और जैन मुनि जो आशीष युक्त वचन बोलते हैं, धर्म बोध देते हैं, उनकी उन बातों को कोई सच न मानें।

4. **अरैक्कुरैइल्लार कूरुवदु–आंगु गुनम् अल्ल।**

   कंडीर........... तिरुक्काट्टुप्पपल्ली।।

अर्थात् – कमर पर वस्त्र न पहनने वाले जैनों की बातें न तो गुणयुक्त हैं और न उपयोगी ही, यह बात सभी लोग अच्छी तरह से जान लें।

5. **इले मरुदेअल्गाग नारुम हरु तुवरकायोड़ु।**
(अदररक) सुक्कु तिन्नुम निलै अमन्दोरै नींगी निन्रु''

(तिरुमगैल पदीकम्)

अर्थात् – मेंहदी लगाकर सुन्दर बनाये हुए हाथों में रखे अदरक एवं सुपारी की कतलियों से युक्त पान खाने वाले इन जैन एवं बौद्ध मुनियों से सदा दूर ही रहें।

6. **तुडुक्कुडै कैयरुम साक्कीयरुम–साक्कीयरुम जातियिन (सातियिन) नींगिय अवत्तवत्तवर–तिरुनल्लारु पदीकम।** (अस्पष्ट)

7. **मासेरिय उड्ल समन् गुरुक्कल।**

अर्थात् – ये मैले कपड़े[1] वाले जैन मुनि गुरु कैसे हो सकते हैं।

8. **वेरवन्दूर मासूरदर वैड्लीनरु उललवर–''तिरु नन्नामले''**

अर्थात्– पसीने से तर–वतर मैले शरीर और कपड़े[1] वाले जैन मुनि गर्मी में इधर–से–उधर भटकते हैं।

9. **मंजगंल समन् मन्डैकरियर गुन्डर गुणमिलिगल**
''तिरु विलीमिललै''

अर्थात्– ये जैन मुनि भिक्षापात्र धारण करने वाले गुण्डे हैं।[2] ये लोगों को कुचक्र में फसाने के लिये और सम्मोहित करने के लिये इधर–उधर धूमने वाले हैं।

10. **मत्तमली सित्तर इरैमदी इल्ला समनर–''तिरुनैदानम''**

अर्थात् – मद में मतवाले (घमंड में चूर) ये जैन मुनि – 'भगवान् हैं''– इस भावना से कोसों दूर हैं, अर्थात् भगवान् के अस्तित्व को नहीं मानने वाले हैं।

---

1. कपड़े केवल श्वेतांबर जैन साधु ही पहनते हैं।
2. भीक्षापात्र केवल श्वेतांबर साधु ही ग्रहण करते हैं।

11. तडुक्के उडल् इडुक्की-तलै परिक्कुम समनर

अर्थात्-शरीर पर ताड़ के पत्तों को लपेटे हुए अपने सिर के बालों को नोचने वाले ये जैन मुनि हैं।[1]

12. पैरुक्क पिदट्रुम समनर-सीरकाली

अर्थात- जिस बात में सच्चाई का लवलेश मात्र भी नहीं इस प्रकार की गप्पें मारने वाले हैं जैन मुनि।

13. गुंडुमुट्रि कूरै इन्रिये पिंडम् उन्नूम पिरान्दर सोल्ल केलेल-तिरुपुलवूर

अर्थात्-मोटे-घाटे एवं नग्न (नंग-धड़ंग) खड़े होकर खाने वाले बौद्ध की बातों को कभी मत मानो।[2]

इस प्रकार तिरु ज्ञान सम्बन्धर जीवन पर्यन्त शैव धर्म के उत्कर्ष के साथ-साथ तमिलनाडू की धरती से जैन धर्म के अस्तित्व को मिटाने के लिये सतत प्रयास करते रहे।

तिरु अप्पर और तिरु ज्ञान सम्बन्धर-ये दोनों ही शैव महासन्त समकालीन थे। इन दोनों के प्रयास से तमिलनाडू में शैवधर्म का प्रचुर प्रचार-प्रसार हुआ। तिरु अप्पर ने अपने जीवन के अन्तिम काल में शैव धर्म का त्याग कर पुनः जैनधर्म अंगीकार किया। ये पल्लवराज महेन्द्र वर्मन के समकालीन सुन्दर पाण्ड्य के गुरु थे, यह पहले बताया जा चुका है। पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन का राज्यकाल यशस्वी इतिहासकार डा. के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री ने ई. सन् 600-630 तक निर्धारित किया है। इससे ज्ञानसम्बन्धर का समय भी ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वतः प्रमाणित होता है।

संत तिरु अप्पर का उपलब्ध जीवन वृत्त

अपनी युवावस्था में वर्षों तक जैन धर्म के एक संघ विशेष परम सम्मानास्पद आचार्य जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर रहने के पश्चात् शैव संत बनकर तिरु अप्पर ने तमिलनाडू में जैनधर्म के सर्वतोमुखी वर्चस्व को समाप्त प्रायः करने और शैव धर्म का व्यापक प्रचार करने में जो युगपरिवर्तनकारी कार्य किये, उन कार्यों के लिये

---

1. दिगंबर मुनि शरीर पर कुछ भी लपेटते।
2. स्व. बाबाजी श्री जयन्त मुनिजी के संसार पक्ष के सुपौत्र श्री रेख चन्द्रजी चौधरी के सौजन्य से श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, जयपुर के विवरण-पत्र के आधार पर।

तिरु अप्पर का जैन और शैव दोनों ही धर्मों के इतिहास में सदा सर्वदा क्रमशः विषाद और हर्ष के साथ स्मरण किया जाता रहेगा।

तमिलनाडू में जैन धर्म पर कभी भुलाये नहीं जाने योग्य घातक प्रहार कर उसे निर्बल बनाने वाले शैव सन्तों में जिस प्रकार अप्पर का नाम शीर्ष स्थान पर आता है। उसी प्रकार तमिलनाडू में शैवधर्म को उत्कर्ष के शिखर पर बैठाने वाले शैव सन्तों में भी अप्पर का नाम मूर्धन्य स्थान पर आता है।

कांचिपति पल्लवराज महेन्द्रवर्मन प्रथम जैसे कवि, वाग्मी और विज्ञ जैन धर्मानुयायी राजा को न केवल शैव धर्मानुयायी ही अपितु जैनधर्म का प्रबल शत्रु बनाकर उससे अपनी इच्छानुसार जैनधर्मावलम्बियों पर हृदयद्रावक अत्याचार करवाने वाला अप्पर कैसा प्रभावशाली वाग्मी और अद्भुत् प्रतिभा का धनी होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

पल्लवराज महेन्द्रवर्मन प्रथम को यशस्वी इतिहासविदों ने एक महान् राज्य निर्माता, कवि, लेखक तथा संगीतज्ञ माना है। वह 'मत्त विलास, 'विचित्र-चित्र' एवं 'गुणभार' जैसी अनेक उपाधियों से विभूषित था। उसने 'मत्त विलास प्रहसन' नामक एक हास्य रस की कृति की भी रचना की। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसकी हास्य रस की उत्कृष्ट साहित्यिक कृति से प्रभावित जैनों ने महेन्द्रवर्मन प्रथम को 'मत्तविलास' की उपाधि से विभूषित किया। अपनी उस 'मत्तविलास-प्रहसन' नामक कृति में महेन्द्रवर्मन ने इसके पात्रों में पाशुपत परिव्राजक, कापालिक, कापालिक की पत्नी और एक बौद्ध (भिक्षु) को तो सम्मिलित नहीं किया है किन्तु किसी जैन श्रमण अथवा गृहस्थ को उस प्रहसन के पात्रों में सम्मिलित नहीं किया। इसे इतिहासविदों ने इस बात का एक सबल प्रमाण माना है कि महेन्द्रवर्मन जैन था। इस प्रकार के विशिष्ट विद्वान् और दृढ़ आस्थावन जैन राजा को भी अप्पर ने शैवधर्मानुयायी बना लिया, यह अप्पर की अप्रतिम प्रतिभा का भी प्रभाव था।

शैव एवं जैन-दोनों धर्मों के साहित्य तथा शिलालेख आदि में अप्पर के जो अपर नाम उपलब्ध होते हैं, वे हैं-

1. तिरु अप्प, 2. अप्पर, 3. तिरु नावुकरसर, 4, धर्मसेन, 5. तिरु नावुकर-सर नायनार और वागीश।

तिरुवाडी, जिसे तेवारम् साहित्य और आधिराजमांगल्यपुर के शिलालेख में तिरुवाडिगाई के नाम से अभिहित किया गया है, एक ऐसा ऐतिहासिक और

1. एपिग्राफी रिपोर्ट्स, मद्रास, वोल्यूम 5।

प्रसिद्ध नगर है, जहाँ अप्पर को धर्म परिवर्तन करवाकर जैन साधु से शैव साधु बनाया गया। अप्पर को जैन साधु से शैव साधु बनाने में उस पर अनेक प्रकार के अद्‌भुत चमत्कारों का प्रयोग करना पड़ा।[1]

अन्ततोगत्वा जब अप्पर को एक चमत्कार के प्रयोग द्वारा असाध्य रोग से मुक्ति और पूर्ण स्वस्थ कर दिया गया तो उसने जैन श्रमणधर्म का परित्याग कर शैव धर्म अंगीकार कर लिया जो बड़ा ही प्रभावशाली और महान् शैव सन्त सिद्ध हुआ।

जैन श्रमण से जब वह शैव साधु बना, उस समय उसका नाम अप्पर रखा गया। अप्पर की तिरुनावुक्करस अर्थात् वागीश (वृहस्पति का पर्यायवाची शब्द) के नाम से भी प्रसिद्धि हुई।

जिस समय वह जैन साधु और पाटलिका (पाटलिपुरम्) के प्राचीन जैन श्रमणकेन्द्र अथवा मठ का आचार्य था उस समय उसका नाम धर्मसेन था। शैव साधु बनते ही अप्पर ने पाटलिका के जैन संस्कृति के एक प्रसिद्ध केन्द्र के मठ को और मंदिर को धूलिसात् कर उसके स्थान पर 'तिरु वाडिगाई' नामक एक विशाल शिवमंदिर बनवाया।

जैन वांग्मय के अध्ययन से संत तिरु अप्पर के विषय में एक तथ्य प्रकाश में आता है कि उसने शैव सन्त बनने से पहले अपने जैन श्रमण–जीवन में एक ऐसे प्राचीन जैन मठ में जैन शास्त्रों का अध्ययन किया जो जैन संस्कृति के अध्ययन का एक प्रमुख केन्द्र स्थल गिना जाता था। आगे चलकर अपनी महान् प्रतिभा के बल पर वे उस विद्या–केन्द्र के आचार्य बनाये गये। इस सम्बन्ध में इतिहास के विद्वानों और शोधार्थियों को इस बात की खोज करने की आवश्यकता है कि वस्तुतः जैन संस्कृति का वह प्राचीन केन्द्र यापनीय परम्परा का केन्द्र था अथवा दिगम्बर परम्परा का या अन्य किसी परम्परा का। जैन संस्कृति का वह प्राचीन केन्द्रस्थल पाण्ड्य राज्य के पाटलिका नामक नगर में था, इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

शक संवत् 380 (ई. सन् 458, तदनुसार वीर नि. सं. 985 और वि. सं.

---

1. विश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे, राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाण्ड्यराष्ट्रे, शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनि सर्वनन्दिः।।2।।
संवत्सरे तु द्वाविंश, कांचीशसिंहवर्मणः।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां, सिद्धमेतच्छतत्रये ।।3।। (शक सं. 380)
– लोकविभाग (संस्कृत)

515) में कांचीपति सिंहवर्मन के शासनकाल के 20 वें वर्ष में पाण्ड्यराज्य के पाटलिक ग्राम में र्सनन्दि नामक जैनाचार्य ने प्राकृत भाषा के 'लोकविभाग' नामक ग्रंथ की रचना सम्पन्न की।[1]

पाटलिका को ही वर्तमान मं तिरुप्पपुलियुर, तिरु पल्हिरिपुरम् अथवा पाट-लिपुरम् के नाम से अभिहित किया जाता है। पाटलिका के उस प्राचीन जैन संस्कृति के केन्द्र (मठ) के स्थान पर ही अप्पर द्वारा बनवाया हुआ तिरुवाडिगाई नामक शिवमंदिर आज विद्यमान है, यह एपिग्राफी रिपोर्ट्स, मद्रास, वोल्यूम 5 से सिद्ध है।

आज प्राकृत भाषा का लोकविभाग कहीं उपलब्ध नहीं है पर उसका सिंह सूरर्षि द्वारा किया हुआ संस्कृत रूपान्तर आज विद्यमान है। संस्कृत लोकविभाग की प्रशस्ति में एक श्लोक है, जो शोधार्थी विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। वह श्लोक इस प्रकार है :-

भव्येभ्यः सुरमानुषोरुपमदसि श्री वर्द्धमानार्हता,
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः।

आचार्यावलिकागतं विरचितं तत् सिंहसूरर्षिणा,
भाषाया परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानितं साधुभिः।।

इस श्लोक में 'ज्ञातं सुधर्मादिभिः' यह पद वस्तुतः मननीय है। क्योंकि दिगम्बर परम्परा के सभी ग्रंथों में भ. महावीर का पट्टधर, भ. महावीर से सम्पूर्ण ज्ञान ग्रहण करने वाला, उस ज्ञान के आधार पर द्वादशांगी रूपी समस्त जैन आगमों का ग्रंथयिता और उस आगमज्ञान का दूसरों को ज्ञान कराने वाला गौतम को ही माना गया है, सुधर्मा को नहीं।

श्वेतांबर परम्परा में भगवान महावीर का प्रथम पट्टधर सुधर्मा को माना गया है। आचारांगादि आगमों के सम्बन्ध में यापनीय परम्परा की मान्यता भी श्वेताम्बर परम्परा के अनुरूप ही है, यह यापनीय परम्परा के यत्किंचित उपलब्ध साहित्य से निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है। 'लोकविभाग' के ऊपर उद्धत श्लोक में सुधर्मा को भ. महावीर से ज्ञान ग्रहण करने वाला और सुधर्मा से ही उस ज्ञान के उत्तरवर्ती आचार्य परम्परा में चले आने का उल्लेख किया है। इससे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आचार्य सर्वनन्दि और उनसे दो तीन पीढ़ी पश्चात् हुए आचार्य धर्मसेन (तिरु अप्पर) कहीं यापनीय परम्परा अथवा किसी अन्य परम्परा के आचार्य तो नहीं थे।

यह प्रश्न शोधार्थियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण शोध का विषय है। आशा है शोधप्रिय विद्वान इस पर शोधपूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास अवश्य करेंगे। इतिहासविदों की यह मान्यता है कि यापनीय परम्परा के आचार्यों एवं साधुओं के नाम अधिकांशतः पूर्वकाल में नन्द्यन्त और कीर्त्यन्त हुआ करते थे। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए लोकविभाग के रचयिता सर्वनन्दि के सम्बन्ध में शोध करना आवश्यक हो जाता है।

सर्वनन्दि का समय लोकविभाग की प्रशस्ति में शक सं. 380, तद्नुसार ई. सन् 458 उल्लिखित है और अप्पर के समकालीन एवं अप्पर द्वारा जैन से शैव बनाये गये पल्लवराज महेन्द्रवर्मन का शासनकाल ई. सन् 600 से 630 माना गया है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि सर्वनन्दि के पाटलिका जैन मठ का उत्तरवर्ती आचार्य धर्मसेन उनसे दो तीन पीढ़ी उत्तरवर्ती काल का लगभग 125 वर्ष पीछे का आचार्य होगा।

अप्पर शैव सन्त बनने से पहले जैन साधु था और पाटलिका नगर के जैन मठ का अधिष्ठाता और जैन संघ का आचार्य था, इसकी पुरातात्विक प्रमाणों से पुष्टि होती है। अप्पर के जैन साधु होने के सम्बन्ध में एपिग्राफी रिपोर्ट्स, मद्रास, की जिल्द 5 का निम्नलिखित अंश प्रमाण के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

Tiruvadi- The Tiruvadigai of the Devaram literature and the Adhirajamangalya-pura inscriptions, is famous as the place where Appar, originally a Jaina, got converted to the Saiva Greed after many trying spiritual ordeals. The inscriptions of the temple which date from the Pallava King "Nripatunga Varman" (A,D. 854 to 880), The Pallava Design of the Linga enshrined in the temple, and the Jaina image which is reqorted to have been dug out of an adjoining field and which is now placed within the temple compound, bear ample testimony to the antiquity of this village and to its former associations with the Jaina faith. The court religion of the Pollavas before Mahendravarman was won over to the Saiva religion by Appar, other-wise called Tirunavukkaradu Nayanar (Sdt Vagisa).

This town like Tirukkoyitur appears to hae also been fortified in ancient times. It was also the scene of a battle between the forces of the later pallava King. Kopperunjiviga and Hoysala Narashimha II (Epigraphica Indica Volume VII Page 260-69) Local tradition has it that during one of the modern Muhammadan or British occupations, the temple Gopura suffered serious damage and was in ruins until repaired about fifty years ago by the head of the local Tirunavukkarasar-Matha,

Which is a dependncy of the Tiruppanandal0Adhimam in the Tanjore district. It is interesting to note that a tamil Brahman poet of the 16th century, called Uddandavelayudha-Bharati, composed a Kalambagam on the god of the lemple and obtained a gift of some land and house site in Saka 1458 (No. 376 of Appendix B)l; but it is regrettable that this composition is not now known to be extant.

हेस्टिंग्स एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स में अप्पर की जीवनी के सम्बन्ध में थोड़ा प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि अप्पर अपनी युवावस्था में एक जैन साधु था। अपनी प्रौढ़ अवस्था में वह कट्टर शैव साधु था और वृद्धावस्था में वह, अपनी प्रौढ़ावस्था में स्वयं द्वारा (शैव सन्त के रूप में) किये गये आचरण पर पश्चात्ताप करता हुआ, पुनः जैन धर्म का अनुयायी बन गया। पुनः जैन बन जाने के पश्चात् यह अप्पर कहीं शैव धर्म का घोर घनिष्ट न कर बैठे-इस आशंका से सशंक हो शैव धर्मानुयायियों ने रहस्यपूर्ण ढंग से अप्पर की हत्या कर दी और एक काल्पनिक आश्चर्यकारी कथानक की संरचना कर लोगों में इस प्रकार का समाचार प्रसृत कर दिया कि अप्पर को एक सिंह ने मारकर खा लिया है। वह सिंह अन्य कोई नहीं भगवान् शंकर का गण ही था।

भगवान जिनेश्वर अथवा अर्हत् की स्तुति के रूप में अप्पर द्वारा तमिल भाषा में रचित स्तोत्र आज भी जैन धर्मावलम्बी भक्तों द्वारा बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम के साथ गाये जाते हैं। अप्पर के वे स्तुतिपरक पद्य कतिपय अंशों में तेवारम् से मिलते-जुलते हैं और जैनों में बड़े ही लोकप्रिय हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अप्पर ने सम्भवतः इन लोकप्रिय स्तुतियों-स्तोत्रों की रचना अपनी आयु के अन्तिम भाग में की थी।

एन्साइक्लोपीडिया में जो एतद्विषयक उल्लेख है, वह इस प्रकार हैः

Not : The Jains give an altogether different version of Appar's life thus :-

"Appar was a Jain ascetic in his youth, a staunch Shaiva in his middle age and a repented follower of Jainism in his old age. On accont of his reconversion to Jainism he was murdered by his Saivite followers lest he should undo by popularising a mysterious story that he was devoured by a tiger which was only a manifestation of Shiva. Certain Tamil hymns in praise of Jina or Arhat are attributed to Appar and are most popularly sung by the Jains even to day. The hymns resemble the Tevaram in many ways perhaps they were sung by Appar during the latter period of his life.

एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स हैस्टिंग्स लिखित- पेज 465)

अप्पर ने शैव संत बनने से बहुत पहले पाटलिका (पाटलिपुरम्) के मठ में जैन श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी। वर्षों तक उस मठ में रहकर जैन सिद्धान्तों का गहन अध्ययन किया था। निश्चित रूप से वह बड़ा मेधावी, वाग्मी और विद्वान् श्रमण रहा होगा और उसके उन गुणों से प्रभावित होकर जैन संघ ने उन्हें पाटलिपुरम् के मठ का अधिष्ठाता और वहाँ के जैन संघ का आचार्य बनाया था। धर्म संघ के संचालन का उसे प्रत्यक्ष और सक्रिय अनुभव था। किन-किन कार्यक्रमों को जन-कल्याण की भावना से हाथ में लेकर जनमत को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है और उन कार्यक्रमों के माध्यम से धर्म संघ को अभ्युदय-उत्थान के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है, इन सब बातों का अप्पर को जैनाचार्य के पद पर वर्षों तक कार्य करते रहने के कारण अच्छा अनुभव था।

शैव धर्म अंगीकार करने के पश्चात् अपने इन अनुभवों के आधार पर शैव धर्म की स्थिति को तमिलनाडु की भूमि में सुदृढ़ करने के लिये जैन संघ द्वारा संचालित उन सब जन-कल्याणकारी कार्यक्रमों को और कार्य प्रणालियों को सैद्धान्तिक रूप से शैव धर्म के कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया। वे जन-कल्याणकारी सार्वभौम मानवीय सिद्धान्त, जिनको अप्पर ने जैनों का अनुसरण करते हुए शैव धर्म के कर्त्तव्यों में सैद्धान्तिक रूप में स्वीकार किया, वे मोटे रूप में इस प्रकार हैः-

1. जैन धर्मानुयायी प्रतिदिन अपने आराध्यदेव तीर्थंकरों की स्तोत्रों से सस्वर पाठ के साथ स्तुति-पूजा-अर्चा करते हैं। इसी का अनुसरण करते हुए अप्पर आदि शैव सन्तों ने भी शैवों के धर्म स्थानों और मन्दिरों आदि में अफने आराध्य देव शिव की स्तुति-पूजा-अर्चा आदि का शैवों के लिये विधान किया।

2. जैन धर्मानुयायी 63 शलाका (श्लाध्य) महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का पठन-पाठन करते हैं। अप्पर आदि शैव सन्तों ने भी 63 महान् शैव सन्तों के जीवन चरित्रों का निर्माण एवं संकलन किया और उनके पठन-पाठन, श्रवण-श्रावण को शैव धर्मावलम्बियों का आवश्यक कर्त्तव्य निर्धारित कर दिया।

3. जैन धर्म में आहारदान, अभयदान (प्राणदान), भैषज्यदान और ज्ञान दान अथवा शास्त्र दान को महान् पुण्यप्रदायी और उच्च कोटि का जन कल्याणकारी कार्य माना गया है। अप्पर आदि शैव सन्तों ने भी अपने शैव धर्म के

सार्वत्रिक प्रचार–प्रसार और सर्वतोमुखी अभ्युत्थान के लिये जैनों का अनुसरण करते हुए आहारभय–भैषज्य–शास्त्र–दान को सैद्धान्तिक रूप से शैवधर्म के प्रमुख कर्त्तव्यों में स्थान दिया।

4. जैन धर्म में वर्ण व्यवस्था के लिये कहीं कोई स्थान नहीं है, केवल कर्म को ही जैन धर्म में महत्त्व दिया गया है। वैष्णव धर्म की मान्यताओं के पूर्णतः प्रतिकूल होते हुए भी ''अप्पर आदि शैव सन्तों ने जाति–पांति को शैव धर्म में कोई स्थान नहीं दिया।'' इसे अप्पर आदि शैव सन्तों ने न केवल सिद्धान्त रूप में ही स्वीकार किया किन्तु तत्काल जाति–पांति–वर्गविहीन शैव समाज के सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत कर दिया। उन्होंने परिगणित अथवा अछूत गिनी जाने वाली जातियों और वर्गों के लोगों को, शैव धर्म संघ में समान स्तर पर सम्मिलित किया। यही नहीं अपितु शैव धर्म में परम पवित्र, परम पूज्य माने गये 63 महान् शैव सन्तों में मधुआ वर्ग के अतिभक्त नायनार नामक सन्त को भी सम्मिलित कर उसे महान् शैव सन्तों में समान स्तर का स्थान और सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया। अप्पर आदि शैव सन्तों का यह एक ऐसा क्रांतिकारी कदम था, जिसने शैव धर्म संघ को जन–जन का परम लोकप्रिय धर्म संघ बना दिया।

5. एक बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य, जिसे जैनाचार्य अथवा जैनधर्मावलम्बी प्राचीन काल से ही निरन्तर करते आ रहे थे, वह था राजसत्ता का राजाओं का संरक्षण प्राप्त करना। अपने धर्म संघ के उत्तरोत्तर अभ्युत्थान के लिये अप्पर आदि शैव संतों ने इस कार्य को परम आवश्यक मान कर इस कार्य में भी जैनों का, जैनाचार्यों का अनुसरण किया।

उन्होंने पल्लवराज महेन्द्रवर्मन, पाण्ड्यराज सुन्दर पाण्ड्य आदि राजाओं को अपनी वाग्मिता एवं अपने चमत्कारों आदि से प्रभावित कर अफने शैव धर्म संघ के उत्कर्ष के लिये, उन राजाओं का संरक्षण प्राप्त किया। शैव धर्म ने राज्याश्रय अथवा राजाओं का संरक्षण प्राप्त कर अपने प्रतिद्वन्द्वियों को कुचलकर अपने धर्म संघ को सबल, सुदूरव्यापी और बहुजन सम्मत बनाने में किस प्रकार अद्‌भुत् एवं आशातीत सफलता, स्वल्पकाल में ही प्राप्त कर ली, इसका प्रस्तुत प्रकरण में उल्लिखित तथ्यों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार जैनों द्वारा पूर्वकाल में अपनायी गयी कार्य प्रणालियों का अनुसरण करते हुए अप्पर आदि शैव सन्तों ने अपने लक्ष्य की पूर्ति में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की।

जहाँ तक अप्पर के समय का सम्बन्ध है, यह पहले बताया जा चुका है कि यह ई. सन् 600 से 630 तक सत्ता में रहे कांचीपति पल्लवराज महेन्द्रवर्मन प्रथम का गुरु और ज्ञानसम्बन्धर, सुन्दरपाण्ड्य, पल्लव सेनापति शिरुतोण्डा दभ्रभक्त और जैनाचार्य वादीभसिंह (ओड़यदेव) का समकालीन था। अतः इस शैव महासन्त अप्पर का समय भी ईसा की सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर इसी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आस–पास का अनुमानित किया जाता है।

तिरु अप्पर के जीवन की एक विशेषता है कि जैन संघ में वह आचार्य पद जैसे गौरवगरिमापूर्ण पद पर पहुँचा। कालान्तर में शैव धर्म अंगीकार कर शैव सन्तों में भी शीर्षस्थान पर पहुँचा और अन्त में पुनः जैनधर्मावलम्बी बन गया और भन्ततोगत्वा जिन शैवों की उत्कर्ष के उच्च शिखर पर पहुँचाया,उन्हीं के द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

तिरु अप्पर और ज्ञानसम्बन्धर के समकालीन
जैनाचार्य वादीभसिंह अपर नाम ओडयदेव

वीर निर्वाण की ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी के संधिकाल के जैनाचार्यों में जैनाचार्य वादीभसिंह का नाम प्रमुख ग्रंथकारों में गिना जाता है।

जयधवला जैसे महान् टीकाग्रंथ के यशस्वी रचनाकार जिनसेनाचार्य के आदिपुराण में उल्लिखित शब्दों के अनुसार वादीभसिंह महाकवि योग्य प्रतिभा की पराकाष्ठा, उच्च कोटि के वाग्मी गमकानुप्रासादादि के पारदृश्वा और वादियों के हस्तियूथ के लिये विकराल केसरी–सिंह तुल्य थे।

वे अपने समय के लब्धप्रतिष्ठा महान् तार्किक भी थे। डा. श्याम शास्त्री द्वारा प्रकाश में लाये गये इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए वादीभसिंह ने शैवक्रान्ति के सूत्रधार के विषय में वादविवाद किया था।1 इनका (वादीभसिंह का) परिचय एक विशेष ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए वादीभसिंह का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

इनका वास्तविक नाम ओडय देव था। अपराजेय वादी अथवा महान् तार्किक होने के कारण उन्हें वादीभसिंह की उपाधि से विद्वानों ने विभूषित किया था।

इनकी 'स्याद्वादसिद्धि', क्षेत्रचूड़ामणि' और 'गद्य चिन्तामणइ'–ये तीन रचनाएं वर्तमान में उपलब्ध हैं। ये तीनों ही ग्रन्थ वस्तुतः ग्रन्थरत्न हैं। 'स्याद्वाद–सिद्धि' नामक न्याय और दर्शन के ग्रंथ में 14 अधिकार हैं किन्तु इसके अन्तिम

अधिकार में केवल 6 कारिकाएं ही हैं और शेष दो कृतियों की तरह इसमें अन्तिम पुष्पिका का भी अभाव है। इससे स्पष्टतः ही यह प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ या तो अपूर्ण रह गया है अथवा किसी लिपिकार ने इसका पूरा आलेखन नहीं किया।

वादीभसिंह की शेष 'क्षेत्रचूड़ामणि' और 'गद्य चिन्तामणि' इन दोनों ही कृतियों में कथानक एक ही है, कथानायक भी वही है और कथा के पात्र भी भिन्न नहीं, वे ही हैं।

इन दोनों कृतियों में कथा, कथानायक और पात्रों का सादृश्य होते हुए भी पाठकों को ये दोनों ग्रन्थ एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न प्रतीत होते हैं, यह वादीभसिंह की अद्भुत कल्पना शक्ति का ही चमत्कार है, जो अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता।

क्षत्रचूड़ामणि एक उच्च कोटि का नीति काव्य है जिसमें सरस सूक्तियाँ और हृदयस्पर्शी उपदेश है।

गद्य चिन्तामणइ एक गद्य काव्य है। इसकी भाषा प्रौढ़ और कुछ जटिल है। इसमें दिये गये उपदेश के नीति-वाक्य बड़े ही सरस एवं चित्ताकर्षक हैं।

विद्वान कवि वादीभसिंह ने अपने गुरु के नामोल्लेख के साथ अपना परिचय देते हुये गद्य चिन्तामणि में लिखा है-

श्री पुष्पसेन मुनिनाथ इति प्रतीतो
दिव्यो मनुर्हृदि सदा मम संविदध्यात्।
यच्छक्तित:प्रकृति मूढ़मतिर्जनोऽपि
वादीभसिंह मुनि पुंगवतामुपैति।।

अर्थात्-पुष्पसेन नामक आचार्य मेरे गुरु हैं। उनमें ऐसी दिव्य शक्ति है कि उनकी उस शक्ति के प्रताप से मेरे जैसा बुद्धिहीन व्यक्ति भी वादीभसिंह आचार्य बन गया।

आचार्य पुष्पसेन को मल्लिषेण प्रशस्ति में अकलंक का गुरु भ्राता बताया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वादीभसिंह के गुरु पुष्पसेन और महान् विद्वान् आचार्य अकलंक समकालीन विद्वान थे।

जहाँ तक वादीभसिंह के समय का प्रश्न है, कहीं इनके निश्चित समय का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। इनका जिनसेनाचार्य ने आदिपुराण में और पार्श्वनाथ

1. एम. ए. आर. फोर 1925 पी. पी. 12-13 पेज 8।

चरित्र के रचनाकार वादीराज सूरि ने स्मरण किया है।

जिनसेनाचार्य का समय ई. सन् 537 है और वादीराज सूरि का समय ई. सन् 1025 है। इससे यह तो निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि वादीभसिंह ईसा की आठवीं शताब्दी से पूर्व के विद्वान् थे। तिरु ज्ञानसम्बन्धर और तिरु अप्पर के प्रकरण में यह बताया जा चुका है कि पल्लवराज महेन्द्रवर्मन प्रथम और सुन्दर-पाण्ड्य यह सब समकालीन थे। वहाँ यह भी बताया जा चुका है कि कांचीपति पल्लवराज महेन्द्रवर्मन प्रथम का शासन काल ई. सन् 600 से 630 तक का है। वादीभसिंह भी अप्पर और ज्ञानसम्बन्धर के समकालीन विद्वान् थे अतः इनका समय भी स्वतः ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध हो जाता है।

आचार्य वादीभसिंह का शैव संत ज्ञानसम्बन्धर और अप्पर के साथ जो वाद-विवाद हुआ उसका क्या निर्णय रहा इस सम्बन्ध में आज तक कोई तथ्य प्रकाश में नहीं आया है। आशा है इतिहास के विद्वान् इस ओर अग्रेसर शोध कर इस पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित हिन्दी पुस्तक

	मूल्य
1. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	100/-
2. जैनत्व जागरण	200/-
3. जागे रे जैन संघ	30/-
4. पाकिस्तान में जैन मंदिर	100/-
5. पल्लीवाल जैन इतिहास	100/-
6. दिगंबर संप्रदाय एक अध्ययन	100/-
7. श्रीमहाकालिका कल्प एवं प्राचिन तीर्थ पावागढ़	100/-
8. अकबर प्रतिबोधक कौन?	50/-
9. इतिहास गवाह है।	30/-
10. तपागच्छ इतिहास	100/-
11. सांच को आंच नहीं	100/-
12. आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13. जगजयवंत जीरावला	100/-
14. द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15. प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	20/-
16. इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	100/-
17. जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18. जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कर	50/-
19. प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20. जैनत्व जागरण भाग-2	200/-
21. जिनपूजा विधि एवं जिनभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22. अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

१. मंत्रं संसार सारं	२००/-
२. जंबू जिनालय शुद्धिकरण	३०/-
३. जागे रे जैन संघ	२०/-
४. घंटनाद	
५. श्रुत रत्नाकर (पू. गुरुदेव जंबूविजयजी म.सा. नुं. जीवन चरित्र)	

भूषण शाह द्वारा संपादित अंग्रेजी पुस्तक

1. Lights	300/-
2. History of Jainism	300/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखित/संपादित

	मूल्य
1. समत्वयोग (1996)	100/-
2. अनेकांतवाद (1999)	100/-
3. अणुपेहा (2001)	100/-
4. आणंदा (1999)	50/-
5. सदयवत्स कथानकम् (1999)	50/-
6. संप्रतिनृप चरित्रम् (1999)	50/-
7. दान एक अमृतमयी परंपरा (2012)	310/-
8. हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप (1992)	100/-
9. दोहा पाहुडं (1999)	50/-
10. बाराक्खर कवक (1997)	50/-
11. प्रभुवीर का अंतिम संदेश (2000)	50/-
12. दोहाणुपेहा (संपादित-1998)	50/-
13. तरंगवती (1999)	50/-
14. हरिवंशपुराण	-
१५. नंदावर्त नुं नंदनवन (२००३)	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित

1. संवेदन की सरगम (2007)50/-
2. संवेदन की सुवास (2008)50/-
3. संवेदन की झलक (2008)50/-
4. संवेदन की मस्ती (2007)50/-
5. आत्मकथाएँ (संपादित) (2013) 50/-
6. शासन सम्राट(जीवन परिचय) 1999 50/-
7. विद्युत सजीव या निर्जीव (1999) 50/-

प. पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित साहित्य

1.	मूर्तिपूजा का प्राचिन इतिहास	100/-
2.	श्रीमान् लोंकाशाह	100/-
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है	30/-
4.	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	100/-
5.	बत्तीस आगम सूत्रों से मूर्तिपूजा सिद्धि	50/-
6.	क्या जैन धर्म में प्रभु-दर्शन-पूजन की मान्यता थी?	50/-

अन्य साहित्य

1.	नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ.वल्लभसूरि म.सा.)	200/-
2.	मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित)	50/-
3.	लोंकागच्छ और स्थानकवासी (पू. कल्याण वि. म.)	100/-
4.	हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन)	30/-
5.	सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा.	20/-
6.	क्या जिनपूजा करना पाप है? (पू.आ. अभयशेखरसूरिजी म.सा.)	30/-
7.	जैन शासन की आदर्श घटनाएँ (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.)	30/-
8.	उन्मार्ग छोडिए, सन्मार्ग भजीए (पं. शांतिलालजी जैन)	30/-
9.	जड़पूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी)	30/-
10.	पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.)	30/-
11.	क्या धर्म में हिंसा दोषाव्ह है?	30/-
12.	तत्त्व निश्चय (कुए की गुंजार पुस्तक की समीक्षा)	--
13.	चलो कदम उठाएँ (सं. पू.मु. ऋषभरत्न वि.म.सा.)	50/-
14.	जिनमन्दिर ध्वजारोहण विधि-सं. जे.के. संघवी/सोहनलालजी सुराणा	

चल रहे कार्य

1. जैन इतिहास (श्री आदिनाथ परमात्मा से अभी तक)
2. सूरि मंत्र कल्प

॥ जैन शासन-जैनागम जयकारा॥

संपादित ग्रंथों की सूचि : (प्रकाशनाधीन)

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. प्राचिन जैन तीर्थ - अंटाली
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. जैन नगरी तारातंबोल - एक रहस्य
8. Research on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार
10. जैन ग्रंथ- नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि- एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारकों के प्राचिन अंश
17. યુગ યુગમાં મળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)
18. मंत्रं संसार सारं (भाग -2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्रं संसार सारं (भाग -3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्रं संसार सारं (भाग -4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्रं संसार सारं (भाग -5) (पुनः प्रकाशन)
22. अज्ञात जैन तीर्थ
23. प्राचीन जैन स्मारकों का रहस्य
24. जैन दर्शन - अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह

27. अजमेर प्रांत के जैन मंदिर
28. जैनत्व जागरण – 3
29. विविध तीर्थ कल्पों का अध्ययन
30. जैनदेवी महालक्ष्मी–मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति – एक अध्ययन
32. जैन आराधना विधि संग्रह
૩૩. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૧, ગુજરાતી)
૩૪. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૨, ગુજરાતી)
૩૫. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૩, ગુજરાતી)
૩૬. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૪, ગુજરાતી)
૩૭. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૫, ગુજરાતી)
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. मेवाड़ देश में जैन धर्म
40. જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રી ને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)
41. जैन धर्म और स्वराज्य
42. ચંદ્રોદય (પૂ. સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા. નું જીવનકવન)
43. जैन श्राविका शान्तला
44. પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવિર આ. ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા.નું ચરિત્ર)
45. મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા. નું સંક્ષિપ્ત જીવન દર્શન)
46. જૈન દર્શન અને મારા વિચાર
47. श्री भद्रबाहु संहिता – (आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निमित्त ज्ञान प्रकरण)
48. પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પ. પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ-પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)
49. ગુરૂમૂર્તિ-દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા...

*** नोंध – सभी ग्रंथों का कार्य पूर्ण हो चुका है। सभी ग्रंथ जल्द ही प्रकाशित होंगे।**

* सहायक ग्रंथ *

1. समणमुं तमिलुं : लेखक–मयिलै सीने वेंकटस्वामी।
2. तमिलर वीट्रिच : लेखक–नील दुरैक्कणन।
3. कलवेट्टिल समणं : लेखक–डा. एकाम्बरनाथन।
4. आचार्य निर्मलसागरजी की तमिलनाडु–विजय : लेखक–निर्मलसागर संघ।
5. समण काप्पियंगल : डा. सुनन्दा देवी।
6. विजय मंगलं : जीवबन्धु टी. एस. श्रीपाल।
7. करन्दै वरलारु : डा. एकाम्बरनाथ।
8. चित्तामूर वरलारु : डा. एकाम्बरनाथ ।
9. तिरुनरंकुन्ट्रं वरलारु : डा. एकाम्बरनाथन्।
10. तमलगमुं जैन इक्कियमुं : जीवबन्धु टी. एस. श्रीपाल।
11. Jainism in Andhra.
12. दक्षीण भारत में जैन धर्म : पं. कैलाशचंद्र शास्त्री
13. तमिलनाडु का जैन इतिहास : पं. मल्लिनाथ शास्त्री
14. Jainism in Vijaynagarm Empire
15. श्री महजानंदघन गुरुगाथा : हम्पी
16. जैन धर्म का मौलिक इतिहास : आ. हस्तिमलजी
17. जैनत्व जागरण
18. जैन धर्म का इतिहास : लेखक–कैलाशचंद्र जैन
19. Epigraphica Karnataka.
20. Jain Inscriptions in Tamilnadu.
21. Jainism in Southern Karnataka
22. पाद महादेवी शान्तला
23. अतिमब्बे– हम्पा नागराजैया
24. जैन शिलालेख संग्रह
25. मिडियावाल जैनिज्म
26. प्राचिन भारत
27. Studies in South Indian Jainism - Ramaswami
28. जैन साहित्य का इतिहास
29. Epigraphica Indica

30. Early History of India
31. Jainism in South India
32. ''तामिल भाषा'' का जैन साहित्य - अनेकांत वर्ष-3
33. Jainism and Karnataka Culture
34. Maysore Gazzator
35. The Oxford History of India
36. कर्णाटक कविचरिते
37. विविध तीर्थकल्प : आ. जिनप्रभ सू.म.
38. भट्टारक संप्रदाय
39. प्राचिन तीर्थ वंदना (Magazine)
40. प्राचिन तीर्थ जीर्णोद्धार (Magazine)
41. अर्हत वचन (Magazine)
42. तित्थयर (Magazine)
43. Jain Journal (Magazine)
44. जैन धर्म और यापनिय संप्रदाय : डा. सागरमलजी जैन

WWW.HOMBUJAPADMAVATI.ORG

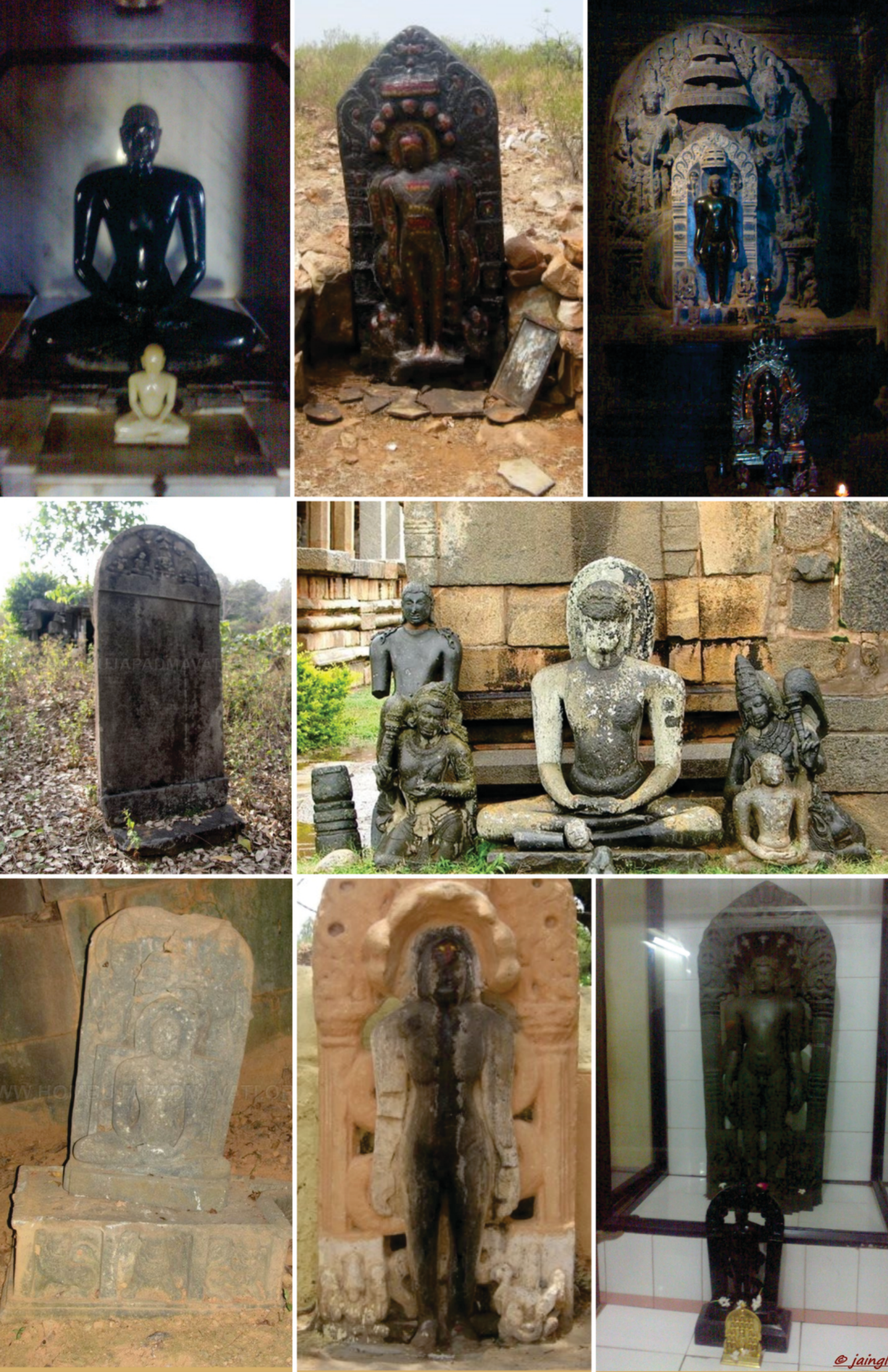

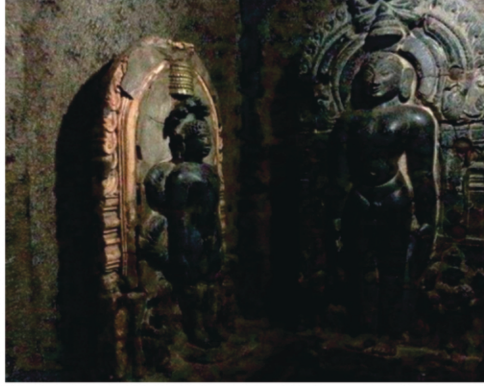

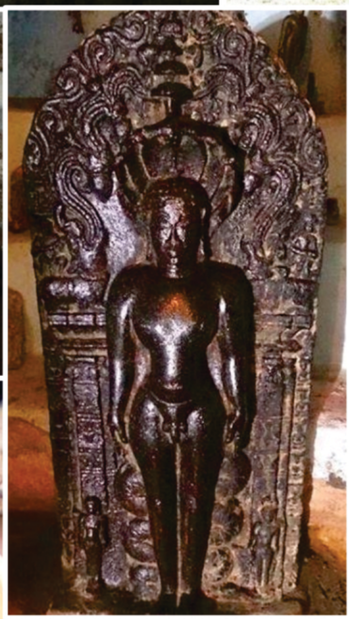

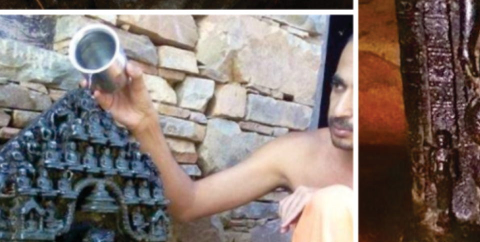

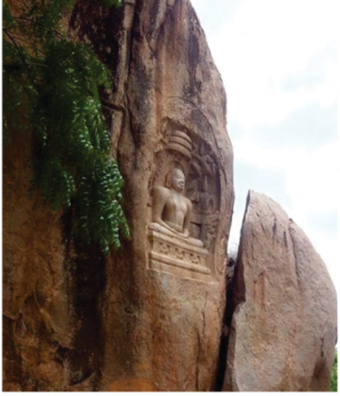

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA
இந்திய தொல்லியல் துறை
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण
ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA
THIS MONUMENT HAS BEEN DECLARED TO BE OF NATIONAL IMPORTANCE UNDER THE ANCIENT MONUMENTS AND ARCHAEOLOGICAL SITES AND REMAINS ACT 1958. AS PER THE ANCIENT MONUMENTS AND ARCHAEOLOGICAL SITES AND REMAINS (AMENDMENT & VALIDATION) ACT 2010, WHOEVER DESTROYS, REMOVES, INJURES, ALTERS, DEFACES, IMPERILS OR MISUSES THIS MONUMENT SHALL BE PUNISHABLE WITH IMPRISONMENT UP TO TWO YEARS OR WITH FINE UP TO RS. 1 (ONE) LAKH OR WITH BOTH.
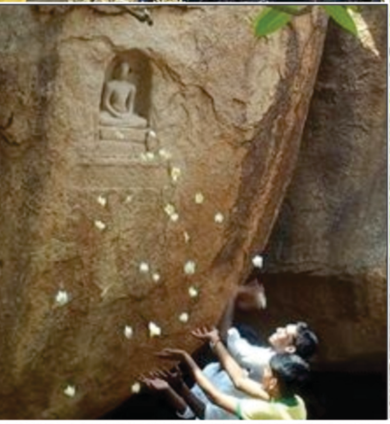

18.01.2013

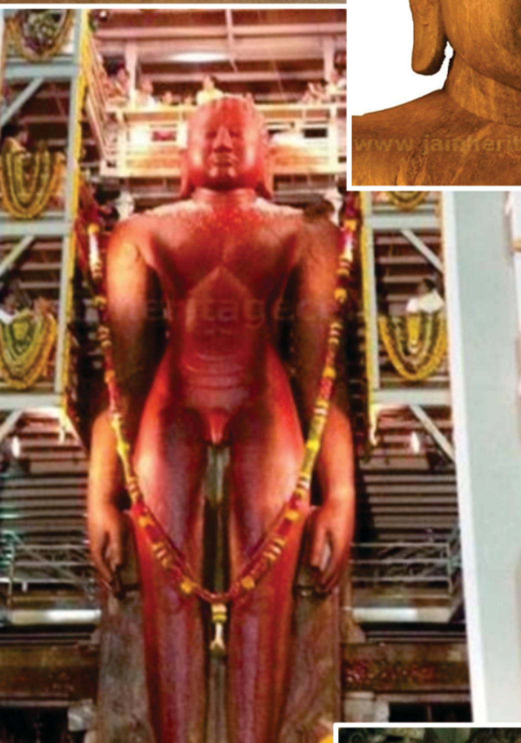

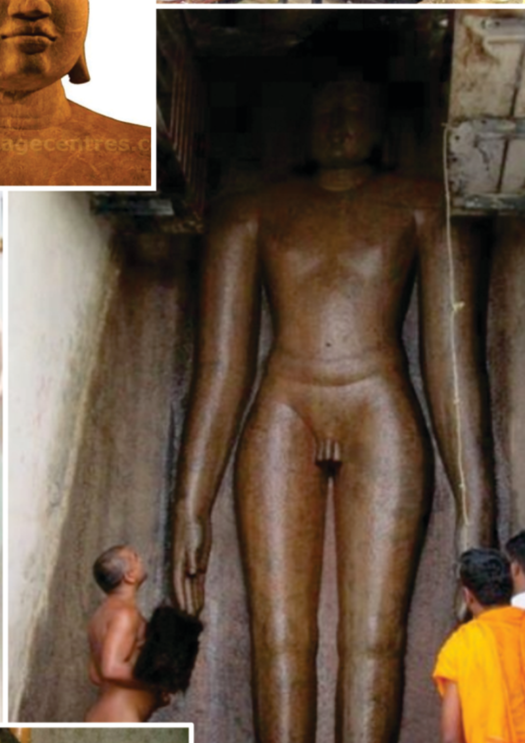

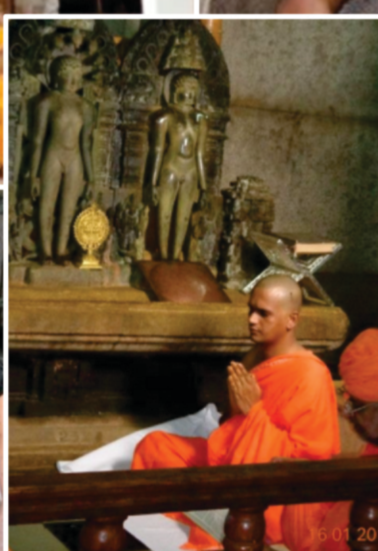

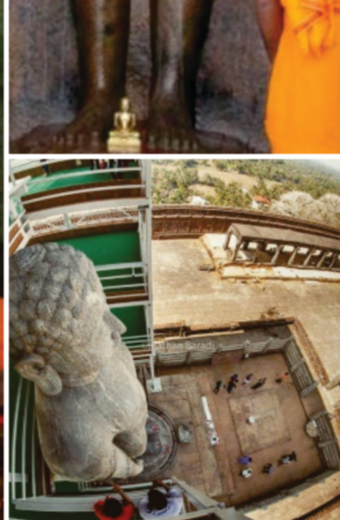

कुतब मीनार, नई दिल्ली के प्रांगण में जैन तीर्थंकर
दर्शाता प्राचीन जैन मंदिर का लिंटल - विश्व जैन संगठन

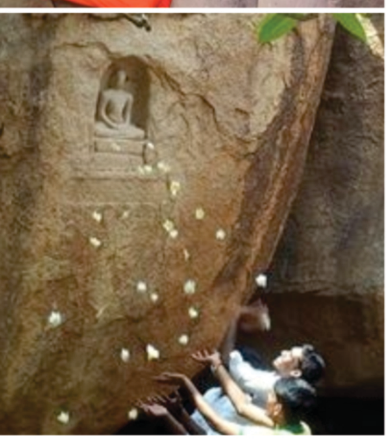

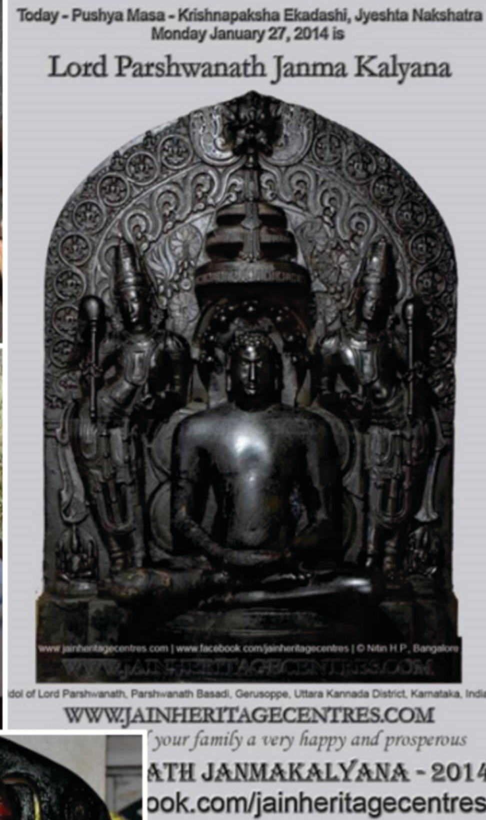

Today - Pushya Masa - Krishnapaksha Ekadashi, Jyeshta Nakshatra
Monday January 27, 2014 is
Lord Parshwanath Janma Kalyana
www.jainheritagecentres.com | www.facebook.com/jainheritagecentres | © Nitin H.P., Bangalore
dol of Lord Parshwanath, Parshwanath Basadi, Gerusoppe, Uttara Kannada District, Karnataka, India.
WWW.JAINHERITAGECENTRES.COM
f your family a very happy and prosperous
ATH JANMAKALYANA - 2014
ook.com/jainheritagecentres

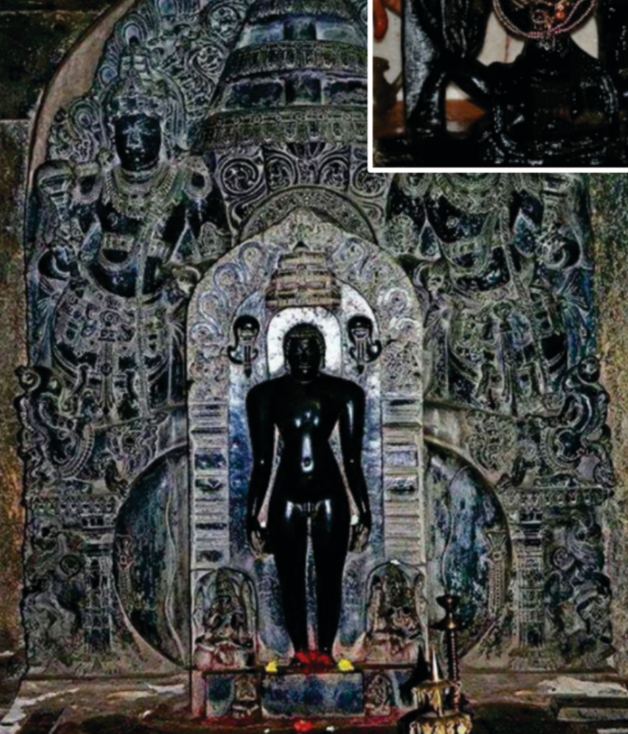

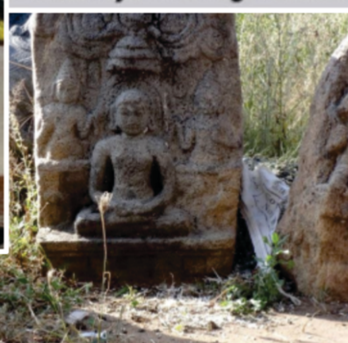

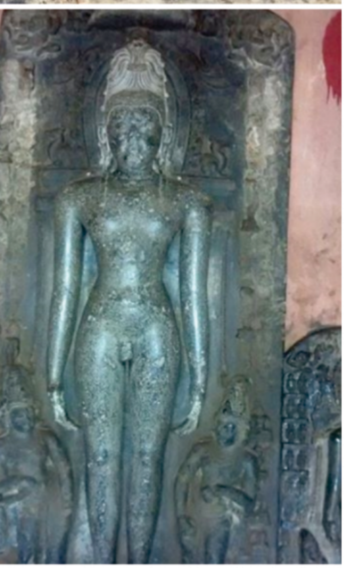

https://www.faceboo
@ www.jainglory.com

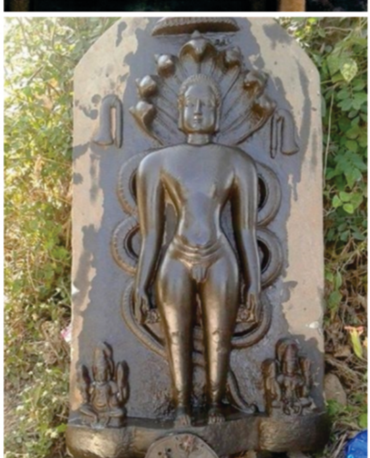

Namma Madurai: Monks turned into Hindu deities.........?
Jain Temple at Kovilankulam near Arupukottai is one of the few structural temples
Photo: S.James

05/07/2013

@www.jainglory.co

@www.jainglory.com

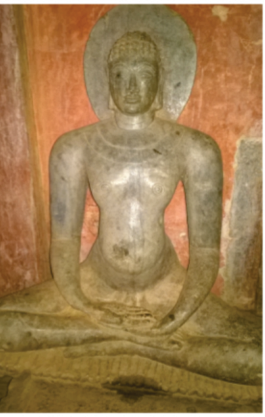

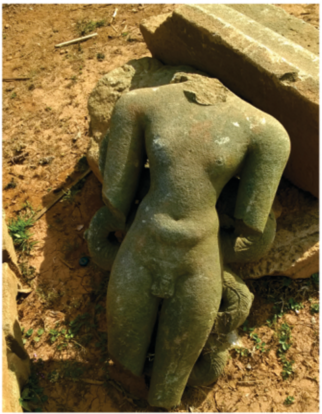

Jainism in Tamilnadu

விருஷபர் - மகாவீரர் முத்துப்பட்டி - மதுரை

Rishaba - Muththupatti - Madurai

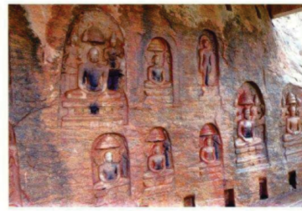

உத்தமபாளயம் - தேனி மாவட்டம்

Uttamapalayam - Theni Dist.

கல்வெட்டு - உத்தமபாளயம்

Inscription - Uttamapalayam

Uttamapalayam - 9th Century AD
Theni Dist., Tamil Nadu.

Panels of Thirthankara images on a massive rock. Of these, eight are of Sri Parswanatha. There are nine inscriptions in Tamil vattezhuthu. Established during during the reign of Pandya emperor Sri Mara Sri Vallaban A Jinalaya called Thiriguna Palli existed. Ascetics of this holy centre include Arishta Nemi Periyar, Ashtobhavasi Kanaga Veera Periyar, Acharya Ajja Nandi and Chandra Prabha.

Jainism in Tamilnadu

Sri Mahaveera - Vallimalai

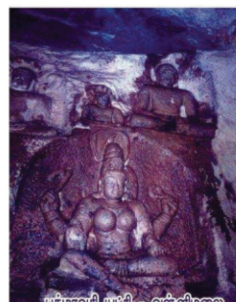

பத்மாவதி யட்சி - வள்ளிமலை

Pathmavathi yaktchi - Vallimalai

This historic monument was created by King Rajamalla II of Western Ganga II dynasty.

Vallimalai - 9th Century AD
Near Vellore on the Chennai - Bangalore highway.
It contains caves, inscriptions in Tamil grantha and Kannada. Images of Thirthankaras and Yakshis

WELCOME

Jainatva Jagaran